सहजानंद शास्त्रमाला

द्रव्य संग्रह प्रथम भाग

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

प्रकाशकीय

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्यवर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरूतर कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक **'द्रव्य संग्रह प्रथम भाग'** अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है।

ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को http://www.sahjanandvarnishastra.org/ वेबसाइड पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थको पुन: प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे । इसी ग्रन्थ की PDF फाइल www.jainkosh.org पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में **श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर** इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। ग्रन्थ के टंकण कार्य में **श्रीमती मनोरमाजी, गांधीनगर** एवं प्रूफिंग करने हेतु श्री **सुरेशजी पांड्या, इन्दौर** का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़ा

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone:94066-82889

Email-vikasnd@gmail.com

www.jainkosh.org

सम्पादकीय (पंचम संस्करण)

आध्यात्मरसिक आदरणीय मुमुक्षु वृन्द,

यह श्री 'द्रव्य संग्रह' नाम का ग्रन्थ नंदी संघ के दिगम्बर जैन मुनीश्वर परम पूज्य प्रात: स्मरणीय १०५ श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की अद्वितीय रचना है जिसकी सरल भाषा में प्रश्नोत्तरी टीका गुरुवर्य्य १०५ सहजानंद वर्णी जी महाराज ने की । इस ग्रन्थ में काल अर्थात् पर्याय की बहुलता से द्रव्यों का वर्णन है । सन १९६७ में मेरी प्रार्थना पर पूज्य गुरुवर्य्य ने इसका द्वितीय संस्करण छपवाने की अनुमति दी थी । मेरे ऊपर महाराजश्री का अति वात्सल्य था उनका क्षयोपशम ज्ञान गजब था । वे सरल परिणामी एवं आध्यात्म विद्या व कर्म फिलौसोफी, न्याय और आगम के प्रकांड विद्वान थे ।

उनकी लेखनी चलती ही रहती थी । वे मितव्ययी थे यहाँ तक कि जब कापी और कागज बहुत सस्ता तब भी उन्होंने त्टैनो की कापियों को रबड़ से मिटा मिटाकर अपनी लेखनी से कितने ही अनमोल ग्रन्थ लिखे जिनमें से कुछ अब भी छपने को बाकी हैं । उनकी टीका करने की शैली सभी विद्वानों से भिन्न थी । उनकी सिद्धान्त की पकड़ अति सूक्ष्म थी मोक्ष महल की रचना के वे कुशल कारीगर थे, उन्होंने प्रत्येक श्लोक की टीका के अन्त में आचार्यों के मर्म को जीवन में उतारने व स्वभाव में घटाने पर बल दिया है ।

द्रव्य संग्रह की प्रत्येक गाथा के अन्तिम चरण में समयसार व प्रवचनसार की सप्तदशांगी टीकाओं की ही भाँति प्रयोगात्मक विधि का अभूतपूर्व वर्णन है जो अत्यन्त हृदय ग्राही एवं दिलचस्प है । चारित्र को आगम की आज्ञा के अनुकूल कैसे ढाले और निकट भविष्य में ही निज प्रयत्न पूर्वक कैसे अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त करके सहज सुखी होवें यह ही उनकी टीकाओं का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

उन्होंने कभी भी आचार्यों के भावों में फेर बदल नहीं किया है बल्कि उनको व्याकरण और न्याय से सिद्ध करके मुमुक्षु को बहकने से रोका है । इसका ज्वलंत उदाहरण है नियमसार की ५३ वीं गाथा की टीका पर आज से तीस वर्ष पहले परम पूज्य आचार्य पद्मप्रभ मलधारी देव के समर्थन में उनके हेतुयुक्त एवं सारगर्भित प्रवचन ।

उन्होंने जो कुछ मुझे दिया है मैं उससे उऋण नहीं हो सकता हूँ जन्म-जन्मान्तर में काम आने वाली विधि का उपयोग उनकी ही कृपा का फल है ।

मेरा सौभाग्य है कि सहजानन्द शास्त्र माला के प्रबन्धक व ट्रस्टीगण ने मुझे नि:स्वार्थ सेवा का अवसर दिया है उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ । मैं तन मन धन से शास्त्रमाला के लिये समर्पित हूँ । पर्यायान्वयी जीव द्रव्य को समझकर एक विशुद्ध अभेद चैतन्यस्वरूप जीव तत्त्व पर लक्ष्य करके निर्मल ज्ञान आनन्द का प्रवाह प्रत्येक आत्मा में प्रवाहित हो एवं सम्पूर्ण आत्म बल प्रगट करने की क्षमता रखने वाला ज्ञान समस्त आत्माओं में प्रकट हो । इस पवित्र भावना के साथ—

समस्त मुमुक्षुगण का सेवक
डॉ० नानक चन्द जैन 'समरस'
सांतौल हाऊस, ठठेरवाड़ा, (मेरठ)

संक्षिप्त विषय परिचय

प्रथम अध्याय—गाथा २७, प्रश्नोत्तर ८३०, वर्णन—उद्देश्यसाधक मङ्गलाचरण, जीव स्वरूप के ९ अधिकार, जीव का निरुक्तत्यर्थ, जीव की उपयोगिता, उपयोग के भेद प्रभेदों का विषय विवरण, जीव का लक्षण, अमूर्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, स्वदेह परिमाणत्व, संसारित्व के भेद-प्रभेद, चौदह जीव समास, शुद्ध जीव के भेद, सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व, अजीवद्रव्यों के भेद पुद्गल पयार्ये, धर्म अधर्म आकाश और उसके भेद, कालद्रव्य का स्वरूप, कालद्रव्य की संख्या, अस्तिकाय की संख्या, अस्तिकाय का स्वरूप, द्रव्यों कें प्रदेशों का परिमाण, अणु के अस्तिकायपना, प्रदेशों के स्वरूप का वर्णन ।

द्वितीय अध्याय—गाथा ११, प्रश्नोत्तर ८३४, वर्णन—नव तत्त्वों के नाम, आस्रव का स्वरूप, भावास्रवों का विशेष विवरण, बन्धतत्त्व का स्वरूप, द्रव्य बंध के भेद व कारण, संवरता का स्वरूप, भावसंवर का विस्तृत विवरण, निर्जरातत्त्व का स्वरूप, मोक्षतत्त्व का स्वरूप, पुण्य पाप तत्त्व का स्वरूप ।

तृतीय अध्याय—गाथा २०, प्रश्नोत्तर ४७४, वर्णन—निश्चयरत्नत्रय, इसे एक बात का कहने का कारण, सम्यग्दर्शन के गुण व दोष, सम्यग्ज्ञान का स्वरूप, दर्शन का स्वरूप, दर्शन ज्ञान की सहभाविता क्रमभाविता, सम्यक्चारित्र, अभेद सम्यक्चारित्र, ध्यान का स्वरूप, ध्यान की सिद्धि का उपाय, पदस्थ ध्यान, अरहंतपरमेष्ठी का स्वरूप, सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप, आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप, उपाध्यायपरमेष्ठी का स्वरूप, निश्चयध्यान व परमध्यान का स्वरूप व उपाय, अन्तिम उपदेश, अन्तिम कथन ।

परमात्म आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयकारी, शाश्वत स्वविहारी । ॐ ।। टेक ।।

काम क्रोध मद लोभ न माया, सरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी । ॐ ।। १ ।।

हे स्वभावमय जिन तुम चीना, भव संतति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी । ॐ ।। २ ।।

परसंबंध बंध दुःख कारण, करत अहित भारी ।
परम ब्रह्म का दर्शन, चहुँगति दुखहारी । ॐ ।। ३ ।।

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनि मन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचि गुन भंडारी । ॐ ।। ४ ।।

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शान्तिचारी ।
टलैं टलैं सब पातक, परबल बलधारी । ॐ ।। ५ ।।

Contents

द्रव्यसंग्रह 7

गाथा १ 7

गाथा २ 11

गाथा ३ 18

गाथा ४ 21

गाथा ५ 24

गाथा ६ 42

गाथा ७ 45

गाथा ८ 49

गाथा ९ 52

गाथा १० 55

गाथा ११ 61

गाथा १२ 67

गाथा १३ 70

गाथा १४ 81

ॐ

पूज्यपाद श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत

द्रव्यसंग्रह

की प्रश्नोत्तरी टीका

मंगलाचरण

गाथा १

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ।।१।।

अन्वय—जेण जिणवरवसहेण जीवमजीवं दव्वं णिद्दिट्ठं देविंदविंदवंदं तं सव्वदा सिरसा वंदे ।

अर्थ—जिन जिनवरवृषभ (तीर्थंकरदेव) ने जीव व अजीव द्रव्य का निर्देश किया है, देवेन्द्रों के समूह द्वारा वंदनीय उन प्रभु को सदा सिर नमाकर वंदन करता हूँ ।

प्रश्न १—जिन्हें वंदन किया है उनको जीव अजीव द्रव्य के निर्देष्टा—इस विशेषण से कहने का क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?

उत्तर—यह विशेषण ग्रन्थनाम से सम्बन्ध रखता है । इस ग्रन्थ में द्रव्यों का वर्णन करना है अत: द्रव्य के निर्देष्टा को वंदित किया है ।

प्रश्न २—इस विशेषण से क्या कुछ ग्रन्थ की भी विशेषता होती है ?

उत्तर—जिन द्रव्यों का वर्णन इस ग्रन्थ में करना है उन द्रव्यों का निर्देष्टा निर्दोष आप्त बतलाने से ग्रन्थ की प्रामाणिकता सिद्ध होती है ।

प्रश्न ३—द्रव्य के नाम के लिये यहाँ "जीव अजीव" इतने शब्दों से क्यों कहा ?

उत्तर—जीव व अजीव के परिज्ञान बिना स्वभाव की प्राप्ति असम्भव है अत: निज के स्वभाव जानने के प्रयोजन को जीव शब्द से बताया है व अन्य जिन सबों से लक्ष्य हटाना है उनको अजीव शब्द से कहा है ।

प्रश्न ४—मूर्त और अमूर्त—इस प्रकार भी तो द्रव्य के दो प्रकार हैं, तब "मुत्तममुत्तं द्रव्यं" इस प्रकार क्यों नहीं कहा गया ?

उत्तर—मूर्त अमूर्त कहने पर अमूर्त आत्मा मूर्त से तो पृथक् हो गया, किन्तु अमूर्त अन्य ४ द्रव्यों से पृथक् प्रतीत नहीं हो पाता, अत: केवल आत्मा के ध्यान का मार्ग बनाने के उद्देश्य से रचित इस ग्रन्थ में जीव अजीव शब्द का प्रयोग किया है ।

प्रश्न ५—जीव अजीव में जीव का पहिले नाम क्यों रक्खा ?

उत्तर—सब द्रव्यों में जीव ज्ञाता होने से प्रधान है तथा वक्ता श्रोता सभी जीव हैं । जीव को ही कल्याण करना है, अत: जीव का पहिले नाम रक्खा है ।

प्रश्न ६—जीव और अजीव का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जीव अजीव के सम्बंध में इसी ग्रन्थ में आगे विस्तार से वर्णन होगा, अत: यहाँ न कहकर अन्य आवश्यक बातें कही जायेगी ।

प्रश्न ७—श्लोक में व ग्रन्थनाम में "दव्वं" शब्द क्यों कहा गया, तच्चं (तत्त्व) आदि शब्द भी तो कहा जा सकता था ?

उत्तर—वस्तु को पदार्थ, अस्तिकाय, द्रव्य, तत्त्व—इन चार शब्दों से कहा जाता है । इनमें द्रव्यदृष्टि से तो पदार्थ, क्षेत्रदृष्टि से अस्तिकाय, कालदृष्टि से द्रव्य, भावदृष्टि से तत्त्व नाम पड़ता है । सो इस ग्रंथ में काल की (पर्याय) बहुलता से वस्तु का वर्णन है, अत: दव्वं शब्द कहा है ।

प्रश्न ८—जिणवरवसहेण इतना बड़ा शब्द क्यों रक्खा, जब तीर्थंकर जिन भी कहलाते हैं, सो मात्र जिन शब्द से भी काम चल जाता ?

उत्तर—जिणवरवसह (जिनवरवृषभ) शब्द का अर्थ है जो मिथ्यात्व बैरी को जीते सो जिन अर्थात् सम्यग्दृष्टि गृहस्थ व मुनि उन सबमें श्रेष्ठ गणधर व उनसे भी श्रेष्ठ तीर्थङ्कर । इन तीन शब्दों से परम्परा भी सूचित कर दी गई है कि सिद्धान्त के मूलग्रन्थकर्ता तो तीर्थंकर देव हैं अर्थात् इनकी दिव्यध्वनि के निमित्त से सिद्धांत का प्रवाह चला, उसके बाद उत्तरग्रन्थकर्ता गणधर देव हुए, फिर अन्य मुनिजन हुए, बाद में गृहस्थ पंडितों ने भी उसका प्रवाह बढ़ाया ।

प्रश्न ९—यहां "णिद्दिट्ठं" शब्द ही क्यों दिया, रचित आदि क्यों नहीं दिया ?

उत्तर—किसी भी सत् का रचने वाला कोई नहीं है । जीव अजीव द्रव्य सभी स्वतंत्रता से अपना अस्तित्व रखते हैं; तीर्थकर परमदेव ने तो पदार्थ जैसे अवस्थित हैं वैसा निर्देश मात्र किया (दर्शाया) है । इससे अकर्तृत्व सिद्ध हुआ ।

प्रश्न १०—देविंदविंदवंदं इस विशेषण से प्रभु की निज महिमा तो कुछ भी नहीं हुई, फिर इस विशेषण से क्या द्योतित किया ?

उत्तर—जिन्हें देवेन्द्रों का सर्वसमूह वंदन करता हो, उनमें उत्कृष्ट सच्चाई अवश्य है, सो इस विशेषण से उत्कृष्ट सच्चाई सुव्यक्त की; तथा वंदना का प्रकरण है उसमें केवल यही बात नहीं है कि मैं वंदना करता हूँ, किन्तु उन्हें तीन लोक वंदन करता है । कहीं मैं नया मार्ग नहीं कर रहा हूँ, यह द्योतित होता है ।

प्रश्न ११—वंदन कितने प्रकार से होता है ?

उत्तर—जितनी दृष्टियां हैं उतने प्रकार से वंदन हैं । उनको संक्षिप्त करने पर ये पाँच दृष्टियां प्राप्त होती है—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) एकदेशशुद्धनिश्चयनय, (४) सर्वशुद्धनिश्चयनय, (५) परमशुद्धनिश्चयनय ।

प्रश्न १२—व्यवहारनय से किसको वंदन किया जाता है ?

उत्तर—व्यवहारनय से अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतशक्ति—सम्पन्न घातिकर्मक्षयसिद्ध तीर्थंकर परमदेव को नमस्कार किया है ।

प्रश्न १३—अशुद्धनिश्चयनय से किसको वंदन हुआ ?

उत्तर—तीर्थंकर परमदेव के लक्ष्य के निमित्त से जो प्रमोद व भक्तिभाव हुआ है उस भाव को उस भाव में परिणत होने रूप वंदन हुआ है ।

प्रश्न १४—एकदेशशुद्धनिश्चयनय से किसका वंदन हुआ ?

उत्तर—इस नय से निज आत्मा में ही जो शुद्धोपयोग का अंश प्रकट हुआ है उसके उपयोगरूप वंदन हुआ है ।

प्रश्न १५—सर्व शुद्धनिश्चयनय से किसको वंदन हुआ है ?

उत्तर—इस नय से पूर्ण शुद्धपर्याय गृहीत होती है, वह वंदक के हैं नहीं और जब होगी तब केवल शुद्ध परिणमन हैं, वहाँ मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहते हैं ।

प्रश्न १६—परमशुद्ध निश्चयनय से किसको नमस्कार हुआ ?

उत्तर—यह नय विकल्पातीत अनादिनिधन स्वत:सिद्ध चैतन्यमात्र को देखता है, वहाँ वन्द्यवंदक भाव नहीं है ।

प्रश्न १७—इस श्लोक में किस नय से वंदन हुआ है ?

उत्तर—शब्द-प्रणाली से तो व्यवहारनय से वंदन हुआ और परमशुद्ध निश्चयनय व सर्वशुद्धनिश्चयनय को छोड़कर शेष अशुद्ध निश्चयनय व एकदेश शुद्धनिश्चयनय से पूर्वोक्त वंदन अन्तर्निहित है ।

प्रश्न १८—यहां सर्वदा वंदन करना लिख रहे हैं यह तो सिद्धांतविरुद्ध भाव है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि यदि सर्वदा कुछ चाहता है तो ज्ञानमात्र परिणमन ही चाहता है ?

उत्तर—यहां सर्वदा के काल को सीमा के भीतर ही लेना चाहिये अर्थात् जब तक निर्विकल्प स्थिति के सन्मुख नहीं हुआ तब तक आपका स्मरण वंदन रहे । जब तक अजीव से पृथक् निज जीवस्वरूप की निर्विकल्प उपलब्धि न हो तब तक ध्यान रहे ।

प्रश्न १९—सिरसा शब्द देने की कोई विशेषता है क्या ?

उत्तर—सिर श्रद्धा की हाँ के साथ ही झुकता है, इससे मन की संभाल सूचित हुई । अन्तर्जल्प के साथ सिर नमता है, इससे वचन की संभाल हुई । काय की संभाल तो प्रकट व्यक्त है । इस तरह सिरसा इस शब्द से मन, वचन, काय तीनों को संभालकर वंदन करना सूचित हुआ ।

प्रश्न २०—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनों से रहित परमात्मा तो सिद्ध परमेष्ठी हैं जो अत्यन्त उत्कृष्ट हैं उन्हें नमस्कार करना चाहिये था ?

उत्तर—यद्यपि यह सत्य है कि सर्वोत्कृष्ट देव सिद्ध परमेष्ठी हैं और वे आराधनीय हैं तथापि उनका भी

परिज्ञान एवं विविध सम्यग्ज्ञान श्री जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से हुआ है तो उनके उपकार के स्मरण के लिये अर्हंत परमेष्ठी को नमस्कार किया है तथा जितने भी सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं वे भी पहिले अरहंत परमेष्ठी थे, सो उनकी पूर्वावस्था ने नमस्कार में सिद्धप्रभु का नमस्कार तो सिद्ध ही है ।

प्रश्न २१—विवेकी जनों की शासनप्रवृत्ति सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन, शक्यानुष्ठान बिना होती नहीं है । यहाँ ये चारों किस प्रकार हैं ?

उत्तर—सम्बन्ध तो यहाँ व्याख्यान व्याख्येय का है । व्याख्यान तो द्रव्य व परमात्मस्वरूप आदि के विवरण का है और व्याख्येय उसके वाचक सूत्र हैं । अभिधेय परमात्मस्वरूप आदि वाच्य अर्थ हैं । प्रयोजन सब द्रव्यों का परिज्ञान है और निश्चय से ज्ञानानंदमय निज स्वरूप का संवेदन, ज्ञान है और अन्त में पूर्ण शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति है । शक्यानुष्ठान तो यह है ही, क्योंकि ज्ञानमय आत्मा ज्ञानरूप मोक्षमार्ग को साधे, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है ।

प्रश्न २२—क्या ग्रन्थ के आदि में मंगलाचरण करना आवश्यक है ?

उत्तर—यद्यपि परमात्मा का व्याख्यान स्वयं मंगल है तथापि जिनेन्द्रदेव के मूल परोपकार से सन्मार्ग को पाने वाले अंतरात्मा से उनका स्मरण हुए बिना रहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि महापुरुष निरहंकार और कृतज्ञ होते हैं ।

प्रश्न २३—मंगलाचरणविधान से क्या अन्य भी कोई फल व्यक्त होते हैं ?

उत्तर—मंगलाचरण के अन्य भी फल हैं—१-नास्तिकता का परिहार । २-शिष्टाचार की पालना । ३-विशिष्ट पुण्य । ४-शास्त्र की निर्विघ्न समाप्ति । ५-कृतज्ञता का विकास । ६-निरहंकारता की सूचना । ७-ग्रन्थ की प्रामाणिकता । ८-ग्रन्थ पढ़ने सुनने वालों की श्रद्धा की वृद्धि आदि ।

इस प्रकार श्रीमज्जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य अब जीवद्रव्य का साधिकार वर्णन करते हैं—

गाथा २

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।।२।।

अन्वय—सो, जीवों उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो भोत्ता संसारत्थो सिद्धो विस्ससोड्ढगई ।

अर्थ—वह जीव जीने वाला है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, अपने देह के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन वाला है ।

प्रश्न १—अन्वय में सर्वप्रथम 'सो' शब्द से तभी अर्थ ध्वनित होता जब कि पहले जीव के बारे में कुछ कह आये होते । यहाँ 'सो' शब्द कैसे दे दिया ?

उत्तर—यद्यपि 'सो' शब्द सिद्धों के बाद ठीक है, क्योंकि जो ऐसा विशिष्ट है वह स्वभाव से ऊर्ध्वगमन वाला है तथापि अर्ध में साथ-साथ नव अधिकारों को स्पष्ट करने के लिये सो शब्द पहिले दिया है ।

प्रश्न २—'सो' शब्द से जीव का ग्रहण कैसे कर लिया ?

उत्तर—इसके कई हेतु ये हैं—१-नमस्कार गाथा में पहिले जीवद्रव्य कहा है, उसके सम्बन्ध में यह उसके बाद की गाथा है । २-इस गाथा में दिये हुए विशेषण स्पष्टतया जीव के हैं । ३-इस ग्रन्थ में अति मुख्यतया जीवद्रव्य का वर्णन है । सर्व द्रव्यों के वर्णन में जीव का वर्णन मुख्य होता है ।

प्रश्न ३—जीने वाला है, इसका भाव क्या है ?

उत्तर—इस विशेषण को व अन्य सभी विशेषणों को समझने के लिये अशुद्धनय व शुद्धनय दोनों दृष्टियों से परीक्षण करना चाहिये । जीव शुद्धनय से तो शुद्ध चैतन्यप्राण से ही जीता है जो शुद्ध चैतन्य अनादि अनंत अहेतुक व स्व-पर-प्रकाशक स्वभावी है । परन्तु अशुद्धनय से अनादि कर्मबन्ध के निमित्त से अशुद्ध प्राणों (इन्द्रिय बल, आयु, उच्छवास) करि जीता है ।

प्रश्न ४—इस विशेषण के देने की क्या सार्थकता है ?

उत्तर—जीव की सत्ता मानने पर ही तो सर्व धर्म अवलम्बित हैं । कितनों का तो ऐसा अभिप्राय है कि जीव कुछ नहीं है, यह सब तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के समागम का चमत्कार है, वे निज चैतन्य में कैसे स्थिर होंगे, वे तो जिस किसी भी भावपूर्वक अंत में मरण करके भी स्व से च्युत रहकर भव-दुःख बढ़ावेंगे । इसलिये आस्तिकता की सिद्धि के लिये वह विशेषण दिया है ।

प्रश्न ५—जीव को जैसा दोनों नयों से घटित किया है ये दोनों स्वरूप जीव में क्या एक साथ हैं अथवा क्रम से ?

उत्तर—ये दोनों स्वरूप एक साथ हैं, क्योंकि ध्रुव चैतन्य बिना व्यवहार प्राण कैसे बनेंगे और इस संसार दशा में व्यवहार प्राण प्रकट प्रतीत हो रहे हैं । हाँ इतनी बात अवश्य है कि कर्मयुक्त होने पर वह व्यवहार से (पर्याय से) जो कि शुद्ध निश्चयनयस्वरूप है, चैतन्य की शुद्ध व्यक्ति से जीता है ।

प्रश्न ६—उक्त तीनों भावों में से किस भाव पर दृष्टि देना लाभकारी है ?

उत्तर—इनमें से परमशुद्धनय (जिसे कि शुद्धनय शब्द से कहा है) के विषयभूत शुद्ध चैतन्य पर दृष्टि देना आवश्यक है, क्योंकि अध्रुव और विकारी पर्याय पर दृष्टि देने से निर्विकल्पकता नहीं आती, किन्तु ध्रुव और अनादि अनंत अविकारी स्वभाव पर दृष्टि देने से निर्विकल्पकता का प्रवाह संचरित होता है ।

प्रश्न ७—उवओगमओ शब्द का अर्थ कितने प्रकार से है ?

उत्तर—यहां उपयोग से अर्थ चैतन्य के परिणामों से है, अत: पर्यायप्ररूपक यह शब्द है, अतएव यहाँ परमशुद्धनिश्चयनय का प्रकार तो नहीं है, शेष दो प्रकार निश्चयनय के हैं—(१) अशुद्ध निश्चयनय, (२) शुद्ध निश्चयनय ।

प्रश्न ८—अशुद्धनिश्चयनय से जीव कैसे उपयोग वाला है ?

उत्तर—अशुद्ध निश्चयनय से यह जीव क्षायोपशमिक ज्ञानोपयोग और क्षायोपशमिक दर्शनोपयोग वाला है ।

प्रश्न ९—जीव को औदयिक अज्ञान के उपयोग वाला यहाँ क्यों नही कहते ?

उत्तर—औदयिक अज्ञान ज्ञान के अभाव को कहते हैं । यद्यपि ज्ञान का सर्वथा अभाव कभी भी नहीं होता तथापि कम अधिक विकास वाला ज्ञान तो रह ही सकता है, सो जितने अंश में ज्ञान है वह तो क्षायोपशमिक है; वहाँ उपयोग होता है, परन्तु जितने अंश प्रकट नहीं है वह अज्ञान औदयिक है वहाँ तो उपयोग ही क्या होगा ? अत: अशुद्धनिश्चयनय से क्षायोपशमिक ज्ञान दर्शनोपयोगमय जीव है ।

प्रश्न १०—शुद्ध निश्चयनय से कैसे उपयोग वाला जीव है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से निर्मल स्वभावपर्याय रूप केवलज्ञान केवलदर्शन के उपयोग वाला है ।

प्रश्न ११—परमशुद्ध निश्चयनय से किसी उपयोग वाला क्यों नहीं बताया ?

उत्तर—उपयोग चैतन्यस्वभाव की ही पर्याय है, परमशुद्धनिश्चयनय ध्रुव द्रव्य स्वभाव की दृष्टि करता है, वह पर्याय को विषय नहीं करता, इसलिए उपयोगमय शुद्धनिश्चयनय व अशुद्धनिश्चयनय से ही कहा गया है ।

प्रश्न १२—जीव के अमूर्त के सम्बन्ध में जानने के लिये कितनी दृष्टियाँ हैं ?

उत्तर—तीन दृष्टियाँ हैं —१-व्यवहारनय, २-अशुद्धनिश्चयनय, ३-शुद्धनिश्चयनय ।

प्रश्न १३—व्यवहारनय से जीव कैसा है ?

उतर—व्यवहारनय से जीव मूर्तिक कर्मों के आधीन होने से स्पर्श रस गंध वर्ण वाले कर्म नोकर्मों से घिरा है, सो मूर्तिक है ।

प्रश्न १४—जीव अशुद्धनिश्चयनय से कैसा है ?

उत्तर—औदयिक भाव व क्षायोपशमिक जो कि आत्मा के स्वभाव की दृष्टि में विभाव है उनसे सहित होने से जीव मूर्तिक है । यहाँ इन भावों में स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं समझना, किन्तु ये भाव क्षायिक भाव की अपेक्षा स्थूल है अत: मूर्त है ब इनके सम्बन्ध से आत्मा भी मूर्त कहलाया, ऐसा जानना ।

प्रश्न १५—शुद्धनिश्चयनय से जीव कैसा है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनय से जीव अमूर्तिक ही है, क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही रूप, रस गंध, स्पर्श से सर्वदा रहित एक चैतन्यस्वभाव है ।

प्रश्न १६—अमूर्त विशेषण देने का फल क्या है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु से जीव को उत्पन्न होना मानते हैं उनके मत में मूर्तिक सिद्ध होता है तथा जो प्रकृति से मूर्त मानते हैं उनका निराकरण हो जाता है । जीव वास्तव में अमूर्त ही हैं ।

प्रश्न १७—अमूर्त शब्द का अर्थ इतना ही किया जाये कि जो मूर्त नहीं सो अमूर्त, तो क्या हानि है ?

उत्तर—इस अर्थ में सद्भाव का भाव नहीं आया । जीव मूर्त न होकर भी वास्तव में अमूर्त असंख्यातप्रदेशी है ।

प्रश्न १८—जीव कर्ता किन-किन दृष्टियों से कहा है ?

उत्तर—जीव उपचार से तो कर्म, नोकर्म (शरीर) का कर्ता है और व्यवहारनय से अपनी पर्याय का कर्ता है जिसमें कि अशुद्धनिश्चयनय रूप व्यवहार से शुभ अशुभ कर्म का कर्ता है और शुद्धनिश्चयनयरूप व्यवहार से अनंतज्ञान आदि शुद्धभाव का कर्ता है ।

प्रश्न १९—परमशुद्ध निश्चयनय से जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव अकर्ता है, क्योंकि यह नय सामान्य स्वभाव को ग्रहण करता है वह अनादि अनंत एक स्वरूप है ।

प्रश्न २०—कर्ता विशेषण से किस विशेषता की सिद्धि होती है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वयं करता है—इस न्याय से जीव भी अपने कार्यों का कर्ता स्वयं है, अन्य कोई प्रभु या कर्म आदि जीव के विभावों को नहीं करते हैं यह सिद्ध होता है तथा जो सिद्धान्त मानता है कि जीव कुछ नहीं करता, प्रकृति ही करती है उस सिद्धान्त का निराकरण हुआ ।

प्रश्न २१—जीव स्वयं विभाव करता है, कर्म विभाव नहीं करता, ऐसा मानने पर विभाव जीव का स्वभाव हो जायेगा ?

उत्तर—जीव का विभाव औपाधिक (नैमित्तिक) है, जीव विभाव से स्वयं परिणमता है वहाँ कर्मोंदय निमित्त अवश्य है, अन्यथा विभाव की विभिन्नता भी न बनेगी ।

प्रश्न २२—जैसे जीव के विभाव में कर्मोंदय निमित्त है इसी प्रकार ईश्वर को निमित्त क्यों न मान लिया जावे ?

उत्तर—ईश्वर क्या सचेष्ट होकर निमित्त होगा या अचेष्ट रहकर ? सचेष्ट होकर निमित्त मानने में तो ईश्वर को रागी द्वेषी होने का भी प्रश्न आवेगा फिर वह ईश्वर ही कहां रहा तथा एक व्यापी बनकर निमित्त नहीं हो सकता । अनेक अव्यापी होकर निमित्त मानने पर ठीक है । जगत में ये जितने सचेष्ट जीव दिख रहे हैं उनमें कोई किसी के रागद्वेषादि में निमित्त हो ही रहे हैं, परन्तु इनकी ईश्वरता व्यक्त नहीं है ।

प्रश्न २३—ईश्वर अचेष्ट होकर जीव की रचना में निमित्त माना जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर—अचेष्ट होकर यदि ईश्वर निमित्त हो सकता है तो हम लोगों के अचेष्ट बनने के लिए अचेष्ट बनने से पहिले तदनुकूल शुभ विकल्पों में ही निमित्तमात्र हो सकता है, किन्तु हमारे सब भावों में निमित्त नहीं बन सकता, परन्तु उसका यथार्थस्वरूप अवश्य समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न २४—क्या जीव कर्ता ही है ?

उत्तर—पर्यायदृष्टि में जीव कर्ता है, क्योंकि पर्यायें परिणति के बिना नहीं होती और परिणतिक्रिया जीव की स्वयं की होती है । परन्तु परमशुद्ध निश्चयनय अथवा शुद्धद्रव्यदृष्टि से जीव अकर्ता है, क्योंकि यह आशय अनादि अनंत सामान्य स्वभाव को स्वीकार करता है ।

प्रश्न २५—जीव कुछ नहीं करता है, यही मान लेने में क्या हानि है ?

उत्तर—प्रथम तो यह सत्स्वरूप के विरुद्ध है अत: अर्थक्रिया न करने वाला असत् हो जावेगा । दूसरी बात यह है कि जीव कुछ नहीं करता है तो मोक्ष का यत्न ही किसलिये और कैसे होगा ।

प्रश्न २६—आत्मा को अपने देह के बराबर बताया है, यदि बट बीज के समान सूक्ष्म (छोटा) माना जाये तो क्या क्षति है ?

उत्तर—आत्मा यदि अतीव छोटा है तो भी समस्त शरीर के बराबर प्रदेशों में एक ही समय सुख दुःख का संवेदन होता है, वह न होकर एक देश में संवेदन होना चाहिये । परन्तु ऐसा होता नहीं है ।

प्रश्न २७—तब फिर आत्मा को सर्वव्यापी मान लेना चाहिये ?

उत्तर—आत्मा देह से बाहर नहीं है, क्योंकि अन्यत्र संवेदन का अनुभव नहीं होता । हाँ, समुद्घात में अवश्य कुछ समय को देह में रहता हुआ भी देह से बाहर जाता है, सो उस समय वहाँ भी सारे प्रदेशों में संवेदन होता है ।

प्रश्न २८—देह बराबर आत्मा के सम्बन्ध में क्या एक ही दृष्टि है या अन्य भी ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में वे दृष्टियां हैं—(१) अशुद्धव्यवहार, (२) शुद्धव्यवहार (३) निश्चय । अशुद्धव्यवहार से तो जीव जिस गति में, जिस देह में रहता है उस देह के परिमाण व्यञ्जन पर्याय (आकार) हैं तथा उस देह के बढ़ने घटने पर उस ही जीवन में भी संकोच विस्तार हो जाता है ।

प्रश्न २९—शुद्धव्यवहार से जीव के कितने परिमाण हैं ?

उत्तर—जीव जिस अन्तिम मनुष्यभव से मोक्ष को प्राप्त होता है उस मनुष्य के देह से किञ्चित् ऊन प्रमाण है । फिर वह प्रमाण न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है ।

प्रश्न ३०—मुक्त किञ्चित् ऊन क्यों हो जाता है ?

उत्तर—इसमें दो प्रकार से वर्णन आता है—(१) सदेह अवस्था में भी जीवों के प्रदेश बाल, नख और ऊपर की अत्यंत पतली झिल्ली, जैसे चाम के अंश में नहीं होते हैं, सो यद्यपि देह छोड़कर भी इतने ही रहते हैं, परन्तु वे देह से कम कहे जाते हैं । (२) संदेह अवस्था में नाक, मुख, कान आदि पोल की जगह में आत्मप्रदेश नहीं होते हैं, किन्तु मुक्त अवस्था में पोल नहीं रहती है । वह स्थान भी भर जाता है जिससे

किञ्चित् ऊन कहा है ।

प्रश्न ३१—निश्चय से जीव किस परिमाण वाला है ?

उत्तर—निश्चय से जीव लोकाकाश-प्रमाण असंख्यातप्रदेशी है, विस्तार की दृष्टि व्यवहार से है ।

प्रश्न ३२—'सदेहपरिमाणो' इस विशेषण से क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर—इस विशेषण से आत्मा वट-बीज प्रमाण है, सर्वव्यापी है, एक सर्वाद्वैत है आदि विरुद्ध आशयों का निराकरण हो जाता है ।

प्रश्न ३३—आत्मा किस नय से किनका भोक्ता है ?

उत्तर—इस विषय की प्ररूपणा उपचार, व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयनय—इन पाँच दृष्टियों से करना चाहिए ।

प्रश्न ३४—उपचार से आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—उपचार से आत्मा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों को भोगता है ।

प्रश्न ३५—व्यवहारनय से आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—व्यवहारनय से आत्मा साता असाता के उदय को भोगता है ।

प्रश्न ३६—अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा हर्षविषाद भाव को भोगता है ।

प्रश्न ३७—शुद्धनिश्चयनय से आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनय से आत्मा रत्नत्रयरूप शुद्धपरिणमन से उत्पन्न हुए पारमार्थिक आनन्द को भोगता है ।

प्रश्न ३८—परमशुद्धनिश्चयनय से आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर—इस नय की दृष्टि में ध्रुव एक चैतन्यस्वभाव ही आता है, उसमें भोक्ता का विकल्प ही नहीं है, इसलिये आत्मा किसी का भी भोक्ता नहीं है ।

प्रश्न ३९—आत्मा के 'भोक्ता' विशेषण अन्य क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर—क्षणिक सिद्धान्त और कूटस्थ सिद्धान्त में आत्मा भोक्ता नहीं है । उसका इससे निराकरण हो जाता है ।

प्रश्न ४०—आत्मा सभी सदा संसारी तो रहते नहीं हैं क्योंकि आत्मा के सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठान के द्वारा अनन्त भव्य जीव संसार से मुक्त हो गये और आगे भी अनन्त भव्य मुक्त होते जावेंगे । फिर 'संसारी' विशेषण कैसे घटित होगा ?

उत्तर—प्रथम तो यह बात है कि यद्यपि अनंत भव्य मुक्त हो चुके व होगे तथापि उनसे अनन्तानंत गुणे जीव संसारी हैं व रहेंगे । दूसरी बात यह है कि जो मुक्त हो चुके वे भी भूतनैगमनय की अपेक्षा संसारी कहे जाते हैं ।

प्रश्न ४१—जीव किस नय से संसारी है ?

उत्तर—इस विषय की प्ररूपण के लिये व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयनय—इन चार नयों का आश्रय करना चाहिये ।

प्रश्न ४२—व्यवहारनय से जीव कैसा संसारी है ?

उत्तर—कर्मनोकर्मबंधनवश हुआ जीव गति , जाति, जीवसमास आदि व्यक्त पर्यायों वाला संसारी है ।

प्रश्न ४३—अशुद्धनिश्चयनय से जीव कैसे संसारी है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनय से जीव दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि गुणों के विभावपरिणमन में उलझा हुआ संसारी है ।

प्रश्न ४४—शुद्धनिश्चयनय से जीव की क्या अवस्था है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनय से जीव संसार से रहित अपने स्वाभाविक पूर्ण विकास में तन्मय शुद्ध है ।

प्रश्न ४५—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव की क्या अवस्था है ?

उत्तर—यह नय अवस्था को देखता ही नहीं, अत: इस नय की दृष्टि में न संसारी है, न मुक्त है, किन्तु सभी जीव एक चैतन्यस्वभावमय हैं ।

प्रश्न ४६—'संसारस्थ' विशेषण से अन्य किस आशय का निराकरण किया है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त यह आशय रखते हैं कि आत्मा अनादि से मुक्त है अथवा अशुद्ध पुद्गल ही संसार को करता है, आत्मा तो मात्र साक्षी ही है आदि बातो का निराकरण हो जाता है ।

प्रश्न ४७—आत्मा सिद्ध है, यह किन-किन दृष्टियों से कहा जाता है ?

उत्तर—मुख्य प्रकृत अर्थ तो यह है कि आत्मा कर्म नौकर्म मलों से दूर होकर संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है, वह आत्मा सिद्ध है । इस विषय को और विशद करने के लिये चार दृष्टियाँ लगाना—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) शुद्धनिश्चयनय, (४) परमशुद्धनिश्चयनय ।

प्रश्न ४८—व्यवहारनय से क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—व्यवहारनय से यह जीव असिद्ध है, सिद्ध नहीं है । वह तो गति, जाति आदि आकाररूप अपने को साधता है ।

प्रश्न ४९—अशुद्धनिश्चयनय से क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—इस नय से भी आत्मा असिद्ध है, सिद्ध नहीं है । वह तो कषाय आदि विभावों को साधता है ।

प्रश्न ५०—शुद्धनिश्चयनय से जीव कैसे सिद्ध है ?

उत्तर—अपने आपके स्वभावपरिणमन से यह आत्मा अपने गुणों के पूर्ण विकास से सिद्ध है । ये कभी सिद्ध अवस्था से च्युत नहीं होते, सदा शुद्ध सिद्ध ही रहेंगे ।

प्रश्न ५१—परमशुद्धनिश्चयनय से क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—यह नय पर्याय को नहीं देखता, इसलिए इस दृष्टि में आत्मा न सिद्ध है, न असिद्ध है । एक

चैतन्यस्वभावी है जो कि स्वतःसिद्ध है ।

प्रश्न ५२—आत्मा को सिद्ध होकर भी सिद्ध की मर्यादा समाप्त होने पर उन्हें असिद्ध हो जाना चाहिये ?

उत्तर—सर्व कर्मों के अत्यन्त क्षय से जहाँ सिद्ध अवस्था प्रकट होती है वहाँ विभाव उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं, इसलिए सिद्ध भविष्य में सर्वकाल तक सिद्ध ही रहेंगे, उनकी सीमा होती ही नहीं ।

प्रश्न ५३—जीव स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करता है, यह विशेषण तो प्रत्यक्ष से भी बाधित है, क्योंकि हम देखते हैं कि जीव जैसे चाहें जहाँ चाहें फिरते हैं ?

उत्तर—जीव का स्वभाव तो ऊर्ध्वगमन का है, परन्तु कर्म नोकर्म की संगति से यह स्वभाव तिरस्कृत हो रहा है । औदारिक वैक्रियक देह के सम्बन्ध से तो यह विदिशा तक में भी गमन कर जाता है ।

प्रश्न ५४—तब यह ऊर्ध्वगमन स्वभाव कब प्रकट होता है ?

उत्तर—जब यह जीव नोकर्म (शरीर) व कर्म से अत्यन्त विमुक्त होकर केवल शुद्धस्वभाव में परिणत हो जाता है तब इसका ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रकट हो जाता है अर्थात् सर्व कर्मों का क्षय होते ही जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव से एक ही समय में एकदम ऊपर चला जाता है ।

प्रश्न ५५—यह जीव ऊपर कहाँ तक चला जाता है ?

उत्तर—मुक्त जीव लोक के अन्त तक चले जाते हैं, इससे आगे धर्मास्तिकाय का निमित्त न होने से वह अपने स्वतंत्र अवस्थान से वहाँ निश्चल हो जाते हैं ।

प्रश्न ५६—तब तो मुक्तों का भी गमन पराधीन हो गया ?

उत्तर—पराधीन तो तब कहलाता जब धर्मास्तिकाय अपनी परिणति से मुक्त जीव को चलाता, किन्तु मुक्त जीव अपने स्वभाव से अपनी परिणति से गमन करते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है ।

प्रश्न ५७—इस समस्त वर्णन से हमें संक्षिप्त सारभूत क्या प्रयोजन लेना है ?

उत्तर—इन समस्त अवस्थावों रूप जो बनता है, ऐसे एक निशुद्ध चैतन्यस्वरूप जीवतत्त्व पर लक्ष्य करना है । जिससे निर्मल ज्ञान आनन्द की पर्याय का प्रवाह चल उठे ।

प्रश्न ५८—तब तो इस ही सारभूत तत्त्व का वर्णन करना था, सब अधिकारों के वर्णन से क्या प्रयोजन था ?

उत्तर—जीवतत्त्व के व्यवहार पर्याय को ही यथार्थतया न समझे वह पर्यायान्वयी जीवद्रव्य को समझने की पात्रता कहां से लावेगा ? इसलिए यह पर्याय वर्णन भी इस प्रयोजन के लिये आवश्यक है ।

अब जीव आदि नव अधिकारों की सूचना करने वाली इस द्वितीय गाथा के अनन्तर बारह गाथावों में इन्हीं नव अधिकारों का विवरण किया जावेगा । जिसमें प्रथम जीव अधिकार के सम्बंध में गाथा कहते हैं—

गाथा ३

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ।।३।।

अन्वय—ववहारा जस्स तिक्काले चदु पाणा इंदिय बलं आउ य आणपाणो सो जीवो हु णिच्चयणयदो जस्स चेदणा सो जीवो ।

अर्थ—व्यवहारनय से जिसके तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास, ये चार प्राण हों वह जीव है, परन्तु निश्चयनय से जिसके चेतना है वह जीव है ।

प्रश्न १—जिस जीव के संसार अवस्था में तो ये चार प्राण थे । किन्तु अब मुक्त अवस्था में आने से प्राणों का अभाव है तो क्या वह व्यवहारनय से जीव नहीं कहा जायेगा?

उत्तर—तीनों काल में हों या केवल भूतकाल में थे, अब नहीं हों तो भी भूतकाल में होने से ग्रहण हो गया, यह "तिक्काले" शब्द का भावार्थ है । इससे यह सिद्ध हुआ कि मुक्त जीव के इस समय ये प्राण नहीं हैं तो भी भूतकाल में थे, सो व्यवहारनय से वह भी जीव हैं ।

प्रश्न २—इन्द्रियप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्येन्द्रियों के निमित्त से उत्पन्न हुआ क्षायोपशमिक भाव इन्द्रियप्राण है ।

प्रश्न ३—इन्द्रियप्राण और इन्द्रिय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु इन्द्रिय से द्रव्येन्द्रिय का ग्रहण होता है । इसी कारण सयोगकेवली के इन्द्रियप्राण नहीं है, परन्तु ये पंचेन्द्रिय माने ही गये हैं ।

प्रश्न ४—इन्द्रियप्राण कितने प्रकार का है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण ५ प्रकार का है—(१) स्पर्शनेन्द्रियप्राण, (२) रसनेन्द्रियप्राण, (३) घ्राणेन्द्रियप्राण, (४) चक्षुरिन्द्रियप्राण, (५) श्रोत्रेन्द्रियप्राण ।

प्रश्न ५—इन इन्द्रियप्राणों के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रिय के निमित्त से जो क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न हुआ वह स्पर्शनेन्द्रिय प्राण है । इसी प्रकार रसनेन्द्रिय आदि के भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न ६—बलप्राण किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—अनन्त शक्ति के एक भाग प्रमाण मन, वचन, काय के निमित्त से उत्पन्न हुए बल को बलप्राण कहते हैं । ये ३ प्रकार के हैं—(१) मनोबल, (२) वचनबल, (३) कायबल ।

प्रश्न ७—इन बलप्राणों के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—मन के निमित्त से उत्पन्न हुए वीर्य के विकास को मनोबल प्राण कहते हैं । इसी प्रकार वचन और कायबल में भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न ८—बल, प्राण, गुप्ति, योग, पर्याप्ति ये मन, वचन, काय के होते हैं, इनमें अन्तर क्या है ?

उत्तर—वीर्य के विकास को बलप्राण कहते हैं । मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के विरोध को गुप्ति कहते हैं । मन, वचन, काय के निमित्त से आत्मप्रदेश परिस्पंद के लिये जो यत्न होता है उसे योग कहते हैं । मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, आहारवर्गणा को ग्रहण करने की अति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न ९—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के निरोध को जब गुप्ति कहा तो इसमें वीर्य गुण का विकास रोक दिया गया, फिर गुप्ति उपादेय नहीं रहेगी ?

उत्तर—अशुद्ध बल को रोककर आत्मबल के विकास को गुप्ति बढ़ाती है, इसलिये परमार्थबल के विकास का कारण होने से गुप्ति उपादेय है ।

प्रश्न १०—आयुप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से भव सम्बंधी जीवन और क्षय से मरण हो वह आयुप्राण है ।

प्रश्न ११—आयुप्राण के चार भेद क्यों नहीं कहे गये ?

उत्तर—चारों आयुवों का सामान्यकार्य उस भव में अवस्थान करना है, इस साधारणता के कारण आयुप्राण एक कहा गया है ।

प्रश्न १२—आनप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर से किसी भी प्रकार वायु के आने-जाने को आनप्राण कहते हैं । जैसे मुख से श्वास उच्छ्वास निकलना । रोमछिद्रों से वायु का आना-जाना । नाड़ी द्वारा संचरण होना । पृथ्वी आदि सर्व शरीर से वायु का आना-जाना । वायुकायिक जीव के भी सर्व शरीर से वायु का आना-जाना आदि ।

प्रश्न १३—इन चारों प्राणों का क्या कभी विनाश भी होता है ?

उत्तर—पाँच इन्द्रियप्राणों का व मनोबल का विनाश तो क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में हो जाता है । वचनबल व आनप्राण का विनाश सयोगकेवली के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में होता है व कायबल का विनाश सयोगकेवली के अन्त में होता है और आयुप्राण का विनाश अयोग केवली के अन्त में होता है ।

प्रश्न १४—इन प्राणों के विनाश होने पर इनके एवज में क्या किसी विशुद्ध, प्राण का विकास होता है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण के अभाव में अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यप्राण का विकास होता है । मनोबल के अभाव में अनन्त वीर्यप्राण का विकास होता है । वचनबल श्वासोच्छ्वास व कायबल के अभाव में प्रदेशों का निश्चलतारूप बल का विकास होता है और आयुप्राण के अभाव में अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्य का सर्वथा निश्चल विकास बना रहता है ।

प्रश्न १५—ये प्राण सभी एक साथ होते हैं या किसी जीव के कम भी होते हैं ?

उत्तर—एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव के स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, ये तीन प्राण होते हैं । पर्याप्त के श्वासोच्छ्वास सहित ४ प्राण होते हैं । द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव के दोइन्द्रिय, कायबल व आयु ये ४ प्राण होते हैं । पर्याप्त के वचनबल व उच्छ्वास सहित ६ प्राण होते हैं । त्रीन्द्रिय अपर्याप्त के ३ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ५

प्राण होते हैं । पर्याप्त के वचनबल व उच्छ्वाससहित ७ प्राण होते हैं । चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त के ४ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ६ प्राण होते हैं । पर्याप्त के वचनबल व उच्छ्वास सहित ८ प्राण होते हैं । असैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त के ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते हैं । पर्याप्त के वचनबल, उच्छ्वास सहित ९ प्राण होते हैं । सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त के ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते हैं । पर्याप्त के मनोबल, वचनबल व उच्छ्वास सहित १० प्राण होते हैं ।

सयोगकेवली के वचनबल, कायबल, आयु व उच्छ्वास—ये चार प्राण होते हैं व अन्त में वचनबल रहित ३ व बाद में उच्छ्वास रहित २ प्राण होते हैं । अयोगकेवली के केवल आयुप्राण होता है ।

प्रश्न १६—ये प्राण जीवमय हैं या अजीवमय ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, सो यद्यपि जीव का मलिन भाव है तथापि पुदगल कर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, सो वे पुद्गलकर्म के कार्य हैं तथा शेष प्राणों का पुद्गल उपादान है । अत: सब प्राण पौद्गलिक हैं ।

प्रश्न १७—निश्चयनय से बीच के प्राण कौन-कौन हैं ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से ज्ञान, दर्शन, शक्ति सुख के अनन्त विकास प्राण हैं व परमार्थ शुद्धनय से चैतन्यप्राण है ।

प्रश्न१८—स्पर्शनादि द्रव्येन्द्रिय क्या प्राण नहीं है ?

उत्तर—अशुद्ध भावेन्द्रियप्राणों का कारण होने से थे द्रव्येन्द्रिय भी असद्भूत व्यवहारनय से प्राण हैं? इनका अन्तर्भाव इन्द्रियप्राण में ही कर लेना चाहिये, परन्तु भावेन्द्रिय न होने से अयोगकेवली के इन्द्रियप्राण नहीं मानना चाहिये ।

प्रश्न १९—इन सब कथनों में उपाय उपेय भी कुछ सिद्ध होता है क्या ?

उत्तर—उपेयतत्त्व शुद्ध चैतन्यप्राण है । उसकी सिद्धि का उपाय यह है कि अति प्राथमिक अवस्था में भावेन्द्रियप्राण व बलप्राण का उपयोग देव, शास्त्र, गुरु की सेवा, ध्यान मनन स्तुति में लगावे, फिर प्राप्त योग्यता को निज अभेद स्वभाव में पहुंचने के प्रयत्न में लगावे । यद्यपि बुद्धिपूर्वक अभेदस्वभाव में पहुंचने का कार्य नहीं होता तथापि पहुंचने का यत्न करता है, फिर अति ज्ञानाभ्यास व ज्ञानसंस्कार एवं योग्यता से अभेदस्वभावी निज चेतन में उपयोग की स्थिरता हो तब सम्पूर्ण आत्मबल प्रकट होता है ।

इस प्रकार जीव अधिकार का वर्णन करके अब उपयोगाधिकार की गाथा कहते हैं—

गाथा ४

उवओगो दुबियप्पों दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं ।।४।।

अन्वय—उवओगोणे दुवियप्पों दंसणं च णाणं, दंसणं चदुधा णेयं चक्खु, अचक्खु, ओही अध केवलं दंसणं ।

अर्थ—उपयोग दो प्रकार का है—१-दर्शनोपयोग, २-ज्ञानोपयोग । दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना चाहिये । १-चक्षुर्दर्शन, २-अचक्षुर्दर्शन, ३-अवधिर्दर्शन और ४-केवलदर्शन ।

प्रश्न १—दर्शनोपयोग का शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—आत्मा में एक दर्शन गुण है, उस गुण के व्यक्त उपयोगात्मक परिणमन को दर्शनोपयोग कहते हैं । दर्शनोपयोग का दूसरा नाम अनाकारोपयोग भी है ।

प्रश्न २—अनाकारोपयोग का भाव क्या है ?

उत्तर—जिस उपयोग के विषय में कोई आकार, विशेष, भेद, विकल्प न आवे, किन्तु निराकार, सामान्य, अभेद, विकल्परहित जिसका विषय हो उसे अनाकारोपयोग कहते हैं ।

प्रश्न ३—चक्षुर्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुरिन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञान की उत्पत्ति के लिये उस ज्ञान से पहिले जो आत्मा की ओर उपयोग होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं । इसी प्रकार अचक्षुर्दर्शन में लगाना, केवल निमित्त में चक्षु को छोड़कर बाकी ४ इन्द्रियां और मन को कहना ।

प्रश्न ४—क्या ज्ञान से पहिले दर्शन का होना आवश्यक है ?

उत्तर—मतिज्ञान से पहिले व अवधिज्ञान से पहिले दर्शन का होना आवश्यक है, केवलदर्शन केवलज्ञान के साथ-साथ होता है । कभी-कभी कोई मतिज्ञान पूर्वक भी होता है, उसके लिये पूर्व का दर्शन, दर्शन है ।

प्रश्न ५—मतिज्ञान व अवधिज्ञान से पहिले दर्शनोपयोग की आवश्यकता क्यों होती है ?

उत्तर—जब पूर्वज्ञानोपयोग तो छूट गया और नया ज्ञानोपयोग करना है तो बीच में आत्मा के अभिमुख होकर नये ज्ञान का बल प्रकट किया जाता है । जैसे पहिले घट को जान रहा था अब पट को जानना है तो घट ज्ञान छूटने पर जब तक पट को नहीं जाना उस बीच में दर्शनोपयोग होता है अर्थात् आत्मा यहाँ किसी वस्तु को जानता फिर आत्मा की ओर झुकता, फिर किसी वस्तु को जानता, फिर आत्मा की ओर झुकता, फिर जानता—यह क्रम चलता रहता है ।

प्रश्न ६—श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान से पहिले दर्शन क्यों नहीं होता ?

उत्तर—ये दोनों ज्ञान पर्याय-विकल्प की मुख्यता करके जानते हैं और जो पर्याय-विकल्प की मुख्यता लेकर जानते हैं उन ज्ञानों से पहिले दर्शन नहीं होता । ये दोनों ज्ञान मतिज्ञानोपयोग के अनन्तर होते हैं ।

प्रश्न ७—केवलज्ञान के साथ ही केवलदर्शन क्यों होता है ? वहाँ अन्य की भांति पहिले केवलदर्शन हो और पीछे केवलज्ञान हो, ऐसा क्यों नहीं होता ?

उत्तर—केवली भगवान के अनंतशक्ति प्रकट हो गई है, अत: ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग दोनों साथ-साथ होते हैं । छद्मस्थ जीवों के अनंतशक्ति नहीं है, अत: साथ-साथ नहीं होते ।

प्रश्न ८—दर्शन और दर्शनोपयोग में क्या अन्तर है ?

उत्तर—दर्शन तो आत्मा की शक्ति है और दर्शन गुण के विकास का नाम दर्शनोपयोग है । दर्शनशक्ति तो नित्य है और उसका परिणमन जो दर्शनोपयोग है वह उत्पाद व्यय स्वरूप है ।

प्रश्न ९—सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग में क्या अन्तर है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुण की निर्मल पर्याय है और दर्शनोपयोग दर्शन गुण की पर्याय है ।

प्रश्न १०—दर्शन और श्रद्धा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—दर्शन तो अन्तर्मुखचित्प्रतिभास का नाम है और श्रद्धा उसे कहते हैं जिसके होने पर प्रतीति, विश्वास अथवा पर्याय की समीचीनता होने लगे ।

प्रश्न ११—दर्शनोपयोग का सम्यग्दर्शन के साथ क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर—दर्शनोपयोग का जो विषय है वह सामान्य-आत्मा है । यदि उस सामान्य आत्मा में अहं अर्थात् निजद्रव्य की प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन होता है । विषय में आया हुआ द्रव्य दोनों का विषय है, इतना मेल तो घटित होता है, किन्तु दोनों पर्याय में पृथक्-पुथक् गुणों के परिणमन हैं, अतः स्वलक्षण की अपेक्षा सम्बंध नहीं है ।

प्रश्न—१२ मिथ्यादृष्टि के दर्शनोपयोग क्या मिथ्या होता है ?

उत्तर—दर्शनोपयोग न मिथ्या होता है और न सम्यक् होता है । हां, यह अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि दर्शनोपयोग के विषय का अनुभव नही करता, परन्तु सम्यग्दृष्टि दर्शनोपयोग के विषय की प्रतीति करता है । यथार्थत: ज्ञान भी न सम्यक् है और न मिथ्या है । ज्ञान मिथ्यात्व व अनंतानुबन्धी के उदय में उपचार से मिथ्या कहलाता है । परन्तु दर्शनोपयोग में यह उपचार भी नहीं है, क्योंकि दर्शनोपयोग निराकार है ।

प्रश्न १३—अवधिदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञान से पहिले होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभास को अवधिदर्शनोपयोग कहते हैं ।

प्रश्न १४—केवलदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवलज्ञान के साथ-साथ होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं ।

प्रश्न १५—ये दर्शनोपयोग किस निमित्त को पाकर प्रकट होते हैं ?

उत्तर—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण व अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से तो क्रमश: चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शन प्रकट होते हैं और केवलदर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन प्रकट होता है ।

प्रश्न १६—क्षयोपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर—उदय में आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकों के उदयाभावी क्षय और आगामी उदय में आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकों के उपशम तथा देशघाती स्पर्द्धकों के उदय को क्षयोपशम कहते हैं ।

प्रश्न १७—दर्शनोपयोग के पाठ से हमें किस कर्त्तव्य की प्रेरणा लेनी चाहिये ?

उत्तर—दर्शनोपयोग का जो विषय है उसे हम ज्ञानोपयोग से ज्ञात करें और उसके ज्ञानोपयोग के स्थिर रहने का यत्न करें । इस उपाय में हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी । अब उपयोगाधिकार में वर्णित किये गये दो प्रकार के उपयोग में से दर्शनोपयोग का वर्णन करके ज्ञानोपयोग का वर्णन करते हैं

गाथा ५

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुद ओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ।।५।।

अन्वय—णाणं अट्ठवियप्पं अणाणणाणाणि मदिसुदओही, मणपज्जय अवि केवलं च पच्चक्खपरोक्खभेयं ।

अर्थ—ज्ञानोपयोग ८ प्रकार का है—कुज्ञान और ज्ञानस्वरूप, मति, श्रुत, अवधि ये ३ और मनःपर्यय व केवलज्ञान । ज्ञानोपयोग प्रत्यक्ष, परोक्ष के भेद से दो प्रकार का भी है ।

प्रश्न १—दो प्रकार से ज्ञानोपयोग के वर्णन में कुछ सामञ्जस्य है क्या ?

उत्तर—ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं—१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष । इनमें प्रत्यक्ष २ प्रकार का है १. विकलप्रत्यक्ष, २. सकलप्रत्यक्ष । विकलप्रत्यक्ष मनःपर्ययज्ञान व अवधिज्ञान हैं । परोक्षज्ञान मति और श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न २—मति, श्रुत, अवधि ये तीन कुज्ञानरूप क्यों हो जाते हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्व के उदय के सम्बन्ध से ये तीनों ज्ञान कुज्ञान कहलाते हैं ।

प्रश्न ३—क्या मिथ्यात्व के उदय का प्रभाव ज्ञान पर भी पड़ता है ?

उत्तर—यद्यपि मिथ्यात्व के उदय से श्रद्धागुण का ही विपरीत परिणमन होता है तथापि विपरीत श्रद्धा वाले जीव के द्रव्य-वस्तु के ज्ञान में यथार्थता व अनुभव न होने से ये ज्ञान भी कुज्ञान कहलाते हैं ।

प्रश्न ४—मिथ्यादृष्टि के भी तो बड़े-बड़े आविष्कारों तक में सच्चा ज्ञान पाया जाता है तब सारी वस्तुवों में मिथ्याज्ञान कैसे कहते ?

उत्तर—जिन्हें शुद्धात्मादितत्त्व के विषय में विपरीत अभिप्राय रहित यथार्थ ज्ञान नहीं है उनके ज्ञान को मिथ्याज्ञान ही कहा गया है । क्योंकि आत्महित के साधक ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान कहा है ।

प्रश्न ५—सम्यग्दृष्टि के भी घटपटादि अनेक पदार्थों के सम्बंध में संशय विपर्ययज्ञान हो जाता है, फिर तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान कहा जाना चाहिये ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि के द्रव्य, गुण, पर्याय का यथार्थ विवेक है । उसमें संशयादिक नहीं हैं । अत: आत्मसाधक ज्ञान में बाधा नहीं आती है, अत: सम्यग्ज्ञान है । हां लौकिक अपेक्षा संशय विपर्यय ज्ञान है, परन्तु इससे मोक्षमार्ग में कोई बाधा नहीं आती ।

प्रश्न ६—मनःपर्ययज्ञान भी कोई-कोई कुज्ञान क्यों नहीं होता ?

उत्तर—मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी भावलिङ्गी साधु के ही होता है । अत: वह कुज्ञान हो ही नहीं सकता ।

प्रश्न ७—आत्मा तो एक द्रव्य है, उसके ये अनेक ज्ञानोपयोग क्यों हो गये ?

उत्तर—आत्मा तो निश्चय से एक स्वभाव है, जिसकी स्वाभाविक पर्याय केवलज्ञान ही होना चाहिये, परन्तु अनादिकाल से कर्मबन्ध करि सहित होने से मतिज्ञानावरणादि के क्षयोपशम के अनुसार ज्ञान प्रकट होते हैं । अत: ये इतने प्रकार से ज्ञानोपयोग हो गये । केवलज्ञान को छोड़कर शेष ज्ञानों में भी असंख्यात असंख्यात

भेद हैं ।

प्रश्न ८—मतिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरण एवं वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से । तथा इन्द्रिय, मन के निमित्त से वस्तु का एकदेश ज्ञान होना मतिज्ञान है ।

प्रश्न ९—तब तो यह मतिज्ञान बहुत पराधीन हो गया ?

उत्तर—उक्त निमित्तों के रहते हुये भी मतिज्ञान ज्ञानस्वभाव के उपादान से ही प्रकट होता है, अन्य द्रव्यों से नहीं, अत: स्वाधीन ही है ।

प्रश्न १०—मतिज्ञान का प्रसिद्ध अपर नाम क्या है ?

उत्तर—मतिज्ञान का प्रसिद्ध अपर नाम आभिनिबोधिक ज्ञान है ।

प्रश्न ११ —आभिनिबोधिक ज्ञान का शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—अभि याने अभिमुख और नि याने नियमित अर्थ के अवबोध को आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न १२—अभिमुख किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्थूल, वर्तमान और व्यवधान रहित पदार्थों को अभिमुख कहते हैं ।

प्रश्न १३—नियमित किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय और मन के नियत विषयों को नियमित पदार्थ कहते हैं ।

प्रश्न १४—किस-किस इन्द्रिय का क्या-क्या विषय नियत है ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रिय का स्पर्श, रसनेन्द्रिय का रस, घ्राणेन्द्रिय का गन्ध, चक्षुरिन्द्रिय का रूप और श्रोत्रेन्द्रिय का सुनना नियत विषय है ।

प्रश्न १५—मन में कौनसा विषय नियत है ?

उत्तर—मन में दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं ।

प्रश्न १६—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रुतज्ञानावरण वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से व नोइन्द्रिय के अवलम्बन से जो ज्ञान प्रकट होता है वह श्रुतज्ञान है । इसका स्पष्ट स्वरूप एक यह भी है कि मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थ में और अन्य विशेष ज्ञान करना सो श्रुतज्ञान है ।

प्रश्न १७—स्मरण आदि ज्ञान का किस ज्ञान में अन्तर्भाव है ?

उत्तर—स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान व सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—इन ज्ञानों का मतिज्ञान में अन्तर्भाव है, क्योंकि ये सब मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से प्रकट होते हैं ।

प्रश्न १८—स्मरण का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तराय के क्षयोपशम व मन के अवलम्बन से अनुभूत अतीत अर्थ का स्मरण होना स्मरण है ।

प्रश्न १९—प्रत्यभिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से, मन के अवलम्बन से पूर्वविज्ञात पर्याय से वर्तमान पर्याय के बीच एकता, सदृशता, विसदृशता व प्रतियोगिता के जोड़रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । जैसे यह वही है, यह अमुक के समान है, यह अमुक से विपरीत है, यह उससे दूर है इत्यादि ।

प्रश्न २०—तर्क किसे कहते हैं ?

उत्तर—साध्य, साधन के व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं । जैसे जहाँ धूम्र होता है वहाँ अग्नि होती है और जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम्र भी नहीं होता ।

प्रश्न २१—अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं । जैसे धूम्र देखकर अग्नि का ज्ञान करना ।

प्रश्न २२—एक वस्तु के ज्ञान के बाद अन्य वस्तु का जानना तो श्रुतज्ञान हो गया, इसका मतिज्ञान में अन्तर्भाव कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—अभ्यस्त पुरुष के संस्कारवश साधन देखते ही मन द्वारा साध्य का ज्ञान हो जाता है, ऐसा स्वार्थानुमान मतिज्ञान में अन्तर्गत होता है ।

प्रश्न २३—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान पदार्थ को इन्द्रिय या मन के द्वारा एकदेश स्पष्ट जानना, सो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है ।

प्रश्न २४—यह मन व इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ इसे तो परोक्ष ही कहना चाहिये ?

उत्तर—मन, इन्द्रियों से उत्पन्न होने के कारण वास्तव में यह मति परोक्ष ही है, किन्तु व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि देखने से वस्तु स्पष्ट देखी जा रही है, कानों से शब्द स्पष्ट सुना जा रहा है, इस कारण वह सब उपचार से प्रत्यक्ष है । लोक कहते भी हैं कि मैंने प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना आदि ।

प्रश्न २५—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान के विषय किस इन्द्रिय के नियत विषय हैं ?

उत्तर—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान के विषय मन के नियत विषय हैं ।

प्रश्न २६—सर्व प्रकार के मतिज्ञान के जानने की प्रगति की अपेक्षा कितने भेद हैं ?

उत्तर—सर्व मतिज्ञानों के ४-४ भेद हैं । अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ।

प्रश्न २७—अवग्रहज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—विषयविषयी के सन्निपात के अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं ।

प्रश्न २८—सन्निपात का मतलब क्या है ?

उत्तर—बाह्य पदार्थ तो विषय होते हैं और इन्द्रिय एवं मन विषयी कहलाते हैं । इन दोनों की ज्ञान के उत्पन्न करने योग्य अवस्था का नाम सन्निपात है ।

प्रश्न २९—अवग्रह के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अवग्रह के दो भेद है—(१) व्यञ्जनावग्रह, (२) अर्थावग्रह ।

प्रश्न ३०—व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्राप्त अर्थात् स्पष्ट अर्थ के ग्रहण को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं अथवा अस्पष्ट अर्थ के ग्रहण करने को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं । इस ज्ञान में इतनी कमजोरी है कि जानने की दिशा भी अनिश्चित रहती है ।

प्रश्न ३१—अर्थावग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थ के ग्रहण करने को अर्थावग्रह कहते हैं, अथवा स्पष्ट अर्थ के ग्रहण करने को अर्थावग्रह कहते हैं । इस ज्ञान में जानने की दिशा निश्चित है और इस ज्ञान के बाद ईहा आदि ज्ञान हो सकते हैं ।

प्रश्न ३२—ईहाज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवग्रह से गृहीत अर्थ की विशेष परीक्षा को ईहा कहते हैं । इस ज्ञान में संदेहपना नहीं है किन्तु वस्तु का विशेष परिज्ञान हो रहा है । फिर भी यह ज्ञान संदेह से ऊपर और अवाय से नीचे की विचार-बुद्धि है ।

प्रश्न ३३—अवायज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर-—ईहाज्ञान से जो पदार्थ का ज्ञान हुआ है उसके पूर्ण प्रतीतियुक्त ज्ञान को अवायज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न ३४—धारणा ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवायज्ञान से निर्णय किये गये पदार्थ के कालान्तर में विस्मरण न होने को धारणाज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न ३५-—मतिज्ञान का विषय पदार्थ है या गुण है या पर्याय ?

उत्तर—मतिज्ञान का विषय पदार्थ है, केवल गुण नहीं और न केवल पर्याय । हां, पदार्थ गुणपर्यायात्मक ही होता है ।

प्रश्न ३६—केवल गुण या केवल पर्याय क्या किसी अन्य ज्ञान का विषय हो सकता है ?

उत्तर—केवल गुण या केवल पर्याय किसी भी ज्ञान का विषय नहीं है, क्योंकि केवल गुण या केवल पर्याय असत् है । असत् किसी भी ज्ञान का विषय नहीं है ।

प्रश्न ३७—द्रव्यार्थिक दृष्टि से गुण जाना तो जाता है फिर वह असत् कैसे है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक दृष्टि से गुण की मुख्यता से पदार्थ जाना जाता है, केवल गुण नहीं ।

प्रश्न ३८—पर्यायार्थिक दृष्टि से पदार्थ जाना जाता है, फिर वह असत् कैसे ?

उत्तर—पर्यायार्थिक दृष्टि से पर्याय की मुख्यता से पदार्थ जाना जाता है, केवल पर्याय नहीं ।

प्रश्न ३९—गुण या पर्याय सत् न सही, किन्तु सत् के अंश तो हैं ?

उत्तर—सत् कभी गुण की मुख्यता से जाना जाता है और कभी पर्याय की मुख्यता से जाना जाता है । इस प्रकार सत् के अंश की कल्पना की गई है । वस्तुत: सदृश परिणमन और विसदृश परिणमन में वर्तता वह एक अखण्ड पदार्थ ही है ।

प्रश्न ४०—अवग्रहादिक चारों प्रकार के मतिज्ञान कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—अवग्रहादिक मतिज्ञान १२-१२ प्रकार के हैं—(१) बहु-अवग्रह, (२) एक-अवग्रह, (३) बहुविध-अवग्रह, (४) एकविध-अवग्रह, (५) क्षिप्र-अवग्रह, (६) अक्षिप्र-अवग्रह (७) अनिःसृत-अवग्रह, (८) निःसृत-अवग्रह, (९) अनुक्त-अवग्रह, (१०) उक्त-अवग्रह, (११) ध्रुव-अवग्रह और (१२) अध्रुव-अवग्रह ।

प्रश्न ४१—बहु-अवग्रह ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुत पदार्थों का एक साथ अवग्रहज्ञान करना बहु-अवग्रहज्ञान है । जैसे पांचों अंगुलियों का एक साथ ज्ञान होना ।

प्रश्न ४२—एक-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक ही पदार्थ का ग्रहण होना एक-अवग्रह है ।

प्रश्न ४३—बहुविध-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुत प्रकार के पदार्थों का अवग्रह करना बहुविध-अवग्रह है ।

प्रश्न ४४—एकविध-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक ही प्रकार के पदार्थ का अवग्रह करना एकविध-अवग्रह है ।

प्रश्न ४५—एकविध-अवग्रह एक प्रकार के बहुत पदार्थों का होता होगा ?

उत्तर—एकविध अवग्रह एक प्रकार के अनेक पदार्थों में भी होता है और एक ही पदार्थ में भी होता है ।

प्रश्न ४६—एक पदार्थ में भी एकविध अवग्रह हो तो इस एकविध व एक-अवग्रह में क्या अन्तर हुआ ?

उत्तर—एक पदार्थ में एकविध में अवग्रह हो तो एक को एक प्रकार की दृष्टि से जानने से होता है और प्रकार की दृष्टि बिना एक को जानने से एक अवग्रह होता है ।

प्रश्न ४७—क्षिप्र-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—शीघ्रता से पदार्थ का अवग्रहज्ञान कर लेना क्षिप्र-अवग्रह है ।

प्रश्न ४८—अक्षिप्र-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—शनै: शनै: पदार्थ का अवग्रह ज्ञान करना, अक्षिप्र-ज्ञान करना अक्षिप्र-अवग्रह है ।

प्रश्न ४९—नि:सृत-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—नि:सृत पदार्थ का अवग्रह करना निःसृत-अवग्रह है ।

प्रश्न ५०—अनिःसृत-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—निःसृत अंश को जानकर अनिःसृत पदार्थ को जानना अनिःसृत अवग्रह है ।

प्रश्न ५१—उक्त-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रियों व मन के द्वारा अपने नियत विषय को जानना उक्त-अवग्रह है ।

प्रश्न ५२—अनुक्त-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी इन्द्रिय या मन द्वारा अपने नियत विषय को जानते हुये साथ ही अन्य विषयों को जानना अनुक्त-अवग्रह है । जैसे चक्षुरिन्द्रिय द्वारा आग को देखते हुये इसको भी जान जाना ।

प्रश्न ५३—व्यञ्जनावग्रह भी क्या सर्व इन्द्रिय व मन के निमित्त से उत्पन्न होता है ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चक्षुरिन्द्रिय व मन के निमित्त से उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय और मन अप्राप्यकारी हैं, इनसे जो जाना जाता है वह एकदम स्पष्ट हो जाता है । व्यञ्जनावग्रह केवल स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र—इन चार इन्द्रियों के निमित्त से उत्पन्न होता है ।

प्रश्न ५४—मतिज्ञान के कितने प्रभेद हो सकते हैं ?

उत्तर—मतिज्ञान के मूल भेद ५ है—(१) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, (२) स्मरण, (३) प्रत्यभिज्ञान, (४) तर्क, (५) अनुमान (स्वार्थानुमान) । इनमें से प्रत्येक के भेद लगाना चाहिये । विस्तार से तो मतिज्ञान के असंख्यात भेद हो जाते हैं ।

प्रश्न ५५—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उत्तर—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कुल भेद ३३६ हैं । वे इस प्रकार हैं—व्यञ्जनावग्रह के ४८, क्योंकि व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियों से बहु आदि बारह प्रकार के पदार्थों के विषय में उत्पन्न होता है । अर्थावग्रह के ७२, क्योंकि अर्थावग्रह पाँचों इन्द्रिय व छठा मन इन ६ साधनों से बारह प्रकार के पदार्थों के विषयों में उत्पन्न होता है । इसी प्रकार ईहा के ७२, अवाय के ७२ और धारणा के भी ७२ भेद हो जाते हैं । सब मिलाकर सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के ३३६ भेद हुये ।

प्रश्न ५६—स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क व स्वार्थानुमान के कितने भेद हो जाते हैं ?

उत्तर—इनके प्रत्येक के १२, १२ भेद हो जाते हैं, क्योंकि उक्त चारों ज्ञान मन के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, इन्द्रियों के निमित्त से उत्पन्न नहीं होते, अत: बारह प्रकार के पदार्थों विषयक मन से उत्पन्न होने वाले स्मरणादि १२-१२ प्रकार के हो जाते हैं ।

प्रश्न ५७—श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—श्रुतज्ञान के २ भेद है—(१) अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान, (२) अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ।

प्रश्न ५८—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका ग्रहण अक्षर के रूप में नहीं किया जाता है उसे अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न ५९—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किन जीवों के होता है ?

उत्तर—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असैनी पञ्चेन्द्रिय जीवों के तो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही होता है । सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवों के भी अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो सकता है ।

प्रश्न ६०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के २ भेद हैं—(१) पर्याय, (२) पर्यायसमास ।

प्रश्न ६१—पर्याय श्रुतज्ञान किये कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय का अर्थ यहाँ सबसे छोटा अंश (भाग) है । अक्षर (जिसका क्षरण अर्थात् विनाश न हो ऐसा ज्ञान) के अनन्तवें भाग पर्यायनामक मतिज्ञान है ।

यह पर्यायनामक मतिज्ञान निरावरण व अविनाशी है । यह पर्याय नामक मतिज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त भव में उत्पन्न होने वाले जीव के प्रथम समय में होता है । इस पर्याय मतिज्ञान से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है उसे भी उपचार से पर्याय श्रुतज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न ६२—पर्यायसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय श्रुतज्ञान से अनन्त भाग अधिक श्रुतज्ञान को पर्यायसमास श्रुतज्ञान कहते हैं और इसके बाद भी असंख्यात लोक प्रमाण षड्वृद्धियों ऊपर तक पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ६३—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका ग्रहण अक्षरों के रूप में हो, उसे अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान सैनी जीवों के ही होता है ।

प्रश्न ६४—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के १८ भेद है—(१) अक्षर, (२) अक्षरसमास, (३) पद, (४) पदसमास, (५) संघात, (६) संघातसमास, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रतिपत्तिसमास, (९) अनुयोग, (१०) अनुयोगसमास, (११) प्राभृतप्राभृत, (१२) प्राभृतप्राभृतसमास, (१३) प्राभृत, (१४) प्राभृतसमास, (१५) वस्तु, (१६) वस्तुसमास, (१७) पूर्व और (१८) पूर्वसमास ।

प्रश्न ६५—अक्षर श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षर की जिससे उत्पत्ति हो सके उसे अक्षरज्ञान कहते हैं अथवा उत्कृष्ट पर्यायसमास श्रुतज्ञान से अनन्तगुणा ज्ञान अक्षरश्रुतज्ञान है ।

प्रश्न ६६—अक्षरश्रुतज्ञान किन जीवों के होता है ?

उत्तर—अक्षरश्रुतज्ञान सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवों के ही हो सकता है, क्योंकि अक्षरश्रुतज्ञान मन का विषय है ।

प्रश्न ६७—अक्षरसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद हैं वे सब अक्षरसमासश्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ६८—पदश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरसमास श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर बढ़ने पर पदश्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ६९—एक द्रव्यश्रुतपद में कितने अक्षर होते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यश्रुतपद में १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं । इन अक्षरों से उत्पन्न हुए भावश्रुत को भी उपचार से पदश्रुतज्ञान नाम से कहते हैं ।

प्रश्न ७०—पदसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदश्रुतज्ञान से ऊपर और संघातश्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब पदसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं ।

प्रश्न ७१—संघातश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट पदसमास में एक अक्षर बढ़ने पर संघातश्रुतज्ञान होता है । इसके द्वारा चार गतिमार्गणा में से एक मति मार्गणा का प्ररूपण हो जाता है ।

प्रश्न ७२—संघातश्रुतज्ञान में कितने पद होते हैं ?

उत्तर—संघातश्रुतज्ञान में संख्यात पद होते हैं ।

प्रश्न ७३—संघातसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—संघातश्रुतज्ञान से ऊपर और प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब संघातसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं ।

प्रश्न ७४—प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट संघातसमास में एक अक्षर बढ़ने पर प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान होता है । प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान के पदों के द्वारा १ मार्गणावों के एक-एक भेद प्ररूपित हो जाते हैं ।

प्रश्न ७५—प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान से ऊपर और अनुयोग श्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं ये सब प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ७६—अनुयोग श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट प्रतिपत्तिसमास में एक अक्षर बढ़ने पर अनुयोग श्रुतज्ञान हो जाता है । अनुयोगश्रुतज्ञान के पदों द्वारा १४ मार्गणावों का पूर्ण प्ररूपण हो जाता है ।

प्रश्न ७७—अनुयोगसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनुयोगश्रुतज्ञान से ऊपर और प्राभृत श्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब अनुयोगसमास श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ७८—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट अनुयोगसमास श्रुतज्ञान में एक अक्षर बढ़ने पर प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ७९—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान में कितने अनुयोग हैं ?

उत्तर—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान में संख्यात अनुयोग हैं ।

प्रश्न ८०—प्राभृतप्राभृत समास किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्राभृतप्राभृत से ऊपर और प्राभृत से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सभी प्राभृतप्राभृत समास कहलाते हैं ।

प्रश्न ८१—प्राभृतश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट प्राभृतप्राभृतसमास से ऊपर एक अक्षर बढ़ने पर प्राभृतश्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ८२—प्राभृतसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्राभृतश्रुतज्ञान से ऊपर और वस्तु श्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब प्राभृतसमास श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ८३—वस्तुश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट प्राभृतसमास के ऊपर एक अक्षर बढ़ने पर वस्तुश्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ८४—वस्तुश्रुतज्ञान में कितने प्राभृत होते हैं ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञान में २० प्राभृत होते हैं ।

प्रश्न ८५—वस्तुसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञान से ऊपर और पूर्व श्रुतज्ञान से नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब वस्तुसमास श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ८६—पूर्वश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट वस्तुसमास में एक अक्षर बढ़ने पर पूर्वश्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ८७—पूर्वसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्वश्रुतज्ञान से ऊपर जब तक लोकबिन्दुसार नामक १४वां पूर्व पूर्ण हो जाता है तब तक एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद हैं वे सर्व पूर्वसमास श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न ८८—उत्कृष्ट पूर्वसमास से ऊपर क्या कोई श्रुतज्ञान नहीं है ?

उत्तर—उत्कृष्ट पूर्वसमास से ऊपर भी श्रुतज्ञान होता है ।

प्रश्न ८९—फिर उत्कृष्ट पूर्वसमास से ऊपर वाले श्रुतज्ञान को श्रुतज्ञान के उक्त भेदों में क्यों नहीं अलग नाम से बताया ?

उत्तर—उत्कृष्ट पूर्वसमास से ऊपर जितना श्रुतज्ञान रह जाता है वह सब एकद्रव्य श्रुतपद के बराबर भी नहीं है, इसलिये इस प्रकिया में उसे अलग भेद करके बताया नहीं है ।

प्रश्न ९०—इस अवशिष्ट श्रुतज्ञान को किस नाम से बोलते हैं ?

उत्तर—अवशिष्ट श्रुतज्ञान का नाम अङ्गबाह्य है । इसमें सामायिकादि १४ विषयों का वर्णन है ।

प्रश्न ९१—विषयवार की अपेक्षा से अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—विषयवार की अपेक्षा से श्रुतज्ञान के मूल २ भेद हैं—(१) अङ्गबाह्य, (२) अङ्गप्रविष्ट ।

प्रश्न ९२—अङ्गबाह्य में कितने भेद हैं ?

उत्तर— अङ्गबाह्य के १४ भेद हैं (१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) वैनयिक, (६) कृतिकर्म, (७) दशवैकालिक, (८) उत्तराध्ययन, (९) कल्पव्यवहार, (१०) कल्प्याकल्प्य, (११) महाकल्प्य, (१२) पुण्डरीक, (१३) महापुण्डरीक, (१४) निषिद्धिका ।

प्रश्न ९३—सामायिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान में किसका वर्णन अथवा ज्ञान है ?

उत्तर—सामायिक श्रुताङ्ग में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन छह पद्धतियों द्वारा

समताभाव के विधान का वर्णन है ।

प्रश्न ९४—चतुर्विंशतिस्तव श्रुताङ्ग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—चतुर्विंशति तीर्थङ्करों के नाम, अवगाहना, कल्याणक, अतिशय व उनकी वन्दना विधि व वन्दनाफल का वर्णन इस श्रुताङ्ग में है ।

प्रश्न ९५—वन्दना नामक श्रुताङ्ग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—एक जिनेन्द्र की व एक जिनेन्द्रदेव के अवलम्बन से जिनालय की वन्दना की विधि का वर्णन वन्दना नामे अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान में है ।

प्रश्न ९६—प्रतिक्रमण नामक श्रुताङ्ग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—देवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक व औत्तमाधिक, इन सात प्रकार के प्रतिक्रमणों का काल व शक्ति के अनुसार करने की विधि का वर्णन है ।

प्रश्न ९७—वैनयिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान में किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस श्रुतांग में ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय व उपचारविनय, इन चार प्रकार के विनयों का वर्णन है ।

प्रश्न ९८—कृतिकर्म नामक श्रुतांग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु, इन पाचों परमेष्ठियों की पूजाविधि का वर्णन कृतिकर्म नामक अंगबाह्य श्रुतज्ञान में है ।

प्रश्न ९९—दशवैकालिक श्रुतांग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—दस विशिष्ट कालों में होने वाली विशेषता व मुनिजनों की आचरणविधि का वर्णन दशवैकालिक श्रुत में है ।

प्रश्न १००—उत्तराध्ययन श्रुतांग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—कैसे उपसर्ग सहना चाहिये, कैसे परीषह सहना चाहिये इत्यादि अनेक प्रश्नों के इसमें उत्तर दिये गये हैं ।

प्रश्न १०१—कल्पव्यवहारनाम श्रुतांग में किसका वर्णन है ?

उत्तर—साधुओं के कल्प्य याने योग्य आचरणों के व्यवहार याने आचरण का कल्प्यव्यवहार में वर्णन है ।

प्रश्न १०२—कल्प्याकल्प्य श्रुताङ्ग में किस विषय का वर्णन है ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के अनुसार मुनियों के लिये यह योग्य है व यह अयोग्य है—इस प्रकार सब कल्प्य और अकल्प्यों का इस श्रुताङ्ग में वर्णन है ।

प्रश्न १०३—महाकल्प नामक अङ्गबाह्य श्रुत में किसका वर्णन है ?

उत्तर—काल व संहनन की अनुकूलता की प्रधानता से साधुओं के योग्य द्रव्य, क्षेत्र आदि का वर्णन इस श्रुताङ्ग में है ।

प्रश्न १०४—पुण्डरीक नामक बाह्य भूत में किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस श्रुताङ्ग में चार प्रकार के देवों में उत्पत्ति के कारणभूत पूजा, दान, तप, व्रत आदि के अनुष्ठानों का वर्णन है ।

प्रश्न १०५—महापुण्डरीक श्रुतांग में किस विषय का वर्णन है ?

उत्तर—इस श्रुताङ्ग में इन्द्र व प्रतीन्द्रों में उत्पत्ति के कारणभूत विशिष्ट तपों के अनुष्ठान का वर्णन है ।

प्रश्न १०६—निषिद्धि का नामक श्रुताङ्ग में किस विषय का वर्णन है ?

उत्तर—दोषों निराकरण में समर्थ अनेक प्रकार के प्रायश्चितों का वर्णन निषिद्धि का नामक बाह्यश्रुत में है ।

प्रश्न १०७—अंगप्रविष्ट के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अंगप्रदिष्ट के बारह भेद है—(१) आचारांग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानांग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृकथाङ्ग, (७) उपासकाध्ययनांग, (८) अन्त:कृद्दशाङ्ग, (९) अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, (१०) विपाकसूत्राङ्ग, (११) प्रश्नव्याकरणाङ्ग और (१२) दृष्टिवादाङ्ग । इन बारह अंगों में से सबसे अधिक विस्तृत दृष्टिवाद अंग है, इसके भी भेद प्रभेद अनेक हैं ।

प्रश्न १०८—दृष्टिवाद अंग के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दृष्टिवाद अंग के ५ भेद है—(१) प्रथमानुयोग, (२) परिकर्म, (३) सूत्र, (४) चूलिका और (५) पूर्व । इनमें से परिकर्म, चूलिका और पूर्व के भी अनेक भेद हैं ।

प्रश्न १०९—परिकर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर—परिकर्म के ५ भेद हैं—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति ।

प्रश्न ११०—चूलिका के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चूलिका के ५ भेद है—(१) जलगता, (२) स्थलगता, (३) मायागता, (४) आकाशगता और (५) रूपगता ।

प्रश्न १११—पूर्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पूर्व के १४ भेद हैं—(१) उत्पादपूर्व (२) अग्रायणीपूर्व, (३) वीर्यानुवाद, (४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, (५) ज्ञानप्रवादपूर्व, (६) सत्यप्रवादपूर्व, (७) आत्मप्रवादपूर्व, (८) कर्मप्रवादपूर्व, (९) प्रत्याख्यानवादपूर्व, (१०) विद्यानुवादपूर्व, (११) कल्याणवादपूर्व, (१२) प्राणवादपूर्व, (१३) क्रियाविशालपूर्व और (१४) लोकबिन्दुसारपूर्व ।

प्रश्न ११२—परिमाण की अपेक्षा कहे गये १८ प्रकार के अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में से किन भेदों में किन अंग पूर्व आदि का समावेश होता है ?

उत्तर—चौदह पूर्वों को छोड़कर बाकी श्रुतज्ञान वस्तु समासपर्यन्त १६ भेदों में समादिष्ट है और चौदह पूर्व पूर्वश्रुतज्ञान पूर्वसमासश्रुतज्ञान में समाविष्ट है ।

प्रश्न ११३—आचाराङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें मुनियों के आचार का वर्णन है कि वह किस तरह समस्त आचरण करे, यत्नपूर्वक भाषण करे, यत्नपूर्वक आहार विहार करे आदि । इस अङ्ग में ८ हजार पद हैं । एक पद में १६३४८ ३७८८८ अक्षर होते हैं?

प्रश्न ११४—सूत्रकृताङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—सूत्रकृताङ्ग में ३६ हजार पद हैं । इस अङ्ग में सूत्रों के द्वारा ज्ञान विनय आदि अध्ययन क्रिया, कल्प्याकल्प्य आदि व्यवहारधर्मक्रिया व स्वसमय और परसमय के स्वरूप का वर्णन है ।

प्रश्न ११५—स्थानाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—स्थानाङ्ग में ४२ हजार पद हैं । इस अङ्ग में प्रत्येक द्रव्यों के १, २, ३ आदि अनेक भेद, विकल्पों का वर्णन है । जैसे जीव एक है, जीव दो हैं—मुक्त और संसारी । जीव के तीन भेद हैं—कर्मयुक्त, जीवन्मुक्त, संसारी इत्यादि ।

प्रश्न ११६—समवायांग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें १ लाख ६४ हजार पद है । इस अङ्ग में सदृश विस्तार वाले सदृश धर्म वाले, सदृश संख्या वाले जो-जो पदार्थ हैं उन सबका वर्णन है । जैसे ४५ लाख योजन वाले ५ पदार्थ हैं—ढाई द्वीप, सिद्धक्षेत्र आदि ।

प्रश्न ११७—व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस अङ्ग में दो लाख अट्ठाइस हजार पद हैं । इसमें साठ हजार प्रश्न और उत्तर हैं । जैसे जीव नित्य है या अनित्य जीव वक्तव्य है या अवक्तव्य इत्यादि ।

प्रश्न ११८—ज्ञातृधर्मकषाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं । इसमें वस्तुओं का स्वभाव तीर्थंकरों का माहात्म्य, दिव्यध्वनि का समय व स्वरूप, गणधर आदि मुख्य ज्ञाताओं की कथावों का वर्णन है ।

प्रश्न ११९—उपासकध्ययनांग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ग्यारह लाख सत्तर हजार पद हैं । इसमें श्रावकों की प्रतिमा, आचरण व क्रियाकाण्डों का वर्णन है । श्रावकोचित मन्त्रों का भी इसमें वर्णन है ।

प्रश्न १२०—अन्तकृद्दशाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें २३ लाख २८ हजार पद हैं और इसमें उन अन्तःकृत केवलियों का वर्णन है जो प्रत्येक तीर्थङ्करों के तीर्थ में दश दश मुनि घोर उपसर्ग सहन करके अन्त में समाधि द्वारा संसार के अन्त को प्राप्त हुए हैं ।

प्रश्न १२१—अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ९२४४००० पद हैं । इसमें प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में होने वाले उन दश दश मुनियों का

वर्णन है जो घोर उपसर्ग सहन करके समाधि भाव से प्राण तज करके विजयादिक अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं ।

प्रश्न १२२—प्रश्न व्याकरणाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ९३१६००० पद हैं । इसमें अनेक प्रश्नों के द्वारा तीन काल सम्बन्धी धनधान्यादि लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, जय, पराजय आदि फलों का वर्णन है ।

प्रश्न १२३—विपाकसूत्र में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं और इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार शुभ अशुभ कर्मों का तीव्र भेद आदि अनेक प्रकार के फल (विपाक) होने का वर्णन है ।

प्रश्न १२४—दृष्टिवाद अङ्ग में कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस अङ्ग में १०८ करोड़ ६८ लाख ५६ हजार पांच पद हैं । इसमें ३६३ मिथ्यामतों का वर्णन और निराकरण है । लोक, द्रव्य, मंत्र, विद्या, कलाओं, कथाओं आदि का भी वर्णन है ।

प्रश्न १२५—प्रथमानुयोग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ५ हजार पद हैं । इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र और प्रतिनारायणों की कथाओं व इनसे सम्बन्धित उपकथाओं का वर्णन है ।

प्रश्न १२६—परिकर्म में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें १ करोड़ ८१ लाख ५ हजार पद हैं । इसमें भूवलय आदि के सम्बंध में गणित के करणसूत्रों का वर्णन है । इसके चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि जो ५ भेद हैं उनके वर्णन में इसके पदों और विषयों का विवरण होगा ।

प्रश्न १२७—चन्द्रप्रज्ञति में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—चन्द्रप्रज्ञप्ति में ३६ लाख ५ हजार पद हैं और इसमें चन्द्र इन्द्र के विमान, परिवार, आयु, गमन आदि का वर्णन है एवं चन्द्रविमान का पूर्णग्रहण अर्द्धग्रहण कैसे होता है इत्यादि तद्विषयक सभी वर्णन हैं ।

प्रश्न १२८—सूर्यप्रज्ञप्ति में कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस परिकर्म में ५ लाख ३ हजार पद हैं और इसमें सूर्य प्रतीन्द्र के विमान, परिवार, आयु, गमन, ग्रहण आदि सभी बातों का वर्णन है ।

प्रश्न १२९—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस परिकर्म में ३ लाख २५ हजार पद हैं और इसमें जम्बूद्वीप के क्षेत्र, कुलाचल, ह्रद, मेरु, वेदिका, वन, अकृत्रिम चैत्यालय, व्यन्तरों के आवास, महानदियों आदि का वर्णन है ।

प्रश्न १३०—द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ५२ लाख ३६ हजार पद हैं । इसमें असंख्याते द्वीपसमुद्रों के विस्तार, रचना, अकृत्रिम चैत्यालय आदि का वर्णन है ।

प्रश्न १३१—व्याख्याप्रज्ञप्ति में कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें रूपी अरूपी द्रव्य, जीव अजीव द्रव्य, अनन्तरसिद्ध परम्परासिद्ध एवं अनेक पदार्थों का व्याख्यान है । इसमें ८४ लाख ३६ हजार पद हैं ।

प्रश्न १३२—सूत्र नामक दृष्टिवादाङ्ग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ८८ लाख पद हैं । इसमें ३६३ मिथ्यामतों का विशेष विवरण है और उन समस्त पूर्वपक्षों का निराकरण है । न्यायशास्त्रों का उद्‌गम इस सूत्र नामक दृष्टिवाद अङ्ग से हुआ है ।

प्रश्न १३३—चूलिका में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसके जलगता आदि ५ भेदों के प्रत्येक के २०९८९२०० पद हैं । इन पाँचों के पदों का जोड़ १०४९४६००० होता है । इतने चूलिका में समस्त पद हैं । इन भेदों के विषय विवरण में चूलिका के विषय का वर्णन हो जावेगा ।

प्रश्न १३४—जलगता चूलिका में किसका वर्णन है ?

उत्तर—जल में अथवा जल पर किस प्रकार गमन किया जा सकता है, अग्नि का स्तम्भन, भक्षण कैसे हो सकता है ? अग्नि में प्रवेश अथवा अग्नि पर बैठना कैसे हो सकता है ? इन सब बातों के करने के मंत्र, तंत्र, तपस्याओं का इसमें वर्णन है ।

प्रश्न १३५—स्थलगता चूलिका में किस बात का वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ऐसे मन्त्र-तन्त्र आदि का वर्णन है, जिसके प्रमाद से मेरु, पर्वत, भूमि में प्रवेश किया जा सकता है और शीघ्र गमन किया जा सकता है ।

प्रश्न १२६—मायागता चूलिका में किस गत का वर्णन है ?

उत्तर—अद्‌भुत मायामय बातें दिखाना, जो वस्तु यहाँ नहीं है उसे शीघ्र हाजिर करना, किसी की गुप्त बात को बता देना आदि इन्द्रजाल सम्बन्धी बातों का इसमें वर्णन है ।

प्रश्न १३७—आकाशगता चूलिका में किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ऐसे मन्त्र-तन्त्र आदि का वर्णन है, जिसके प्रभाव से आकाश में नाना प्रकार से गमन किया जा सकता है ।

प्रश्न १३८—रूपगता चूलिका में किस बात का वर्णन है ?

उत्तर—इसमें सिंह, वृषभ आदि अनेक प्रकार के रूप बना लेने के कारणभूत मन्त्र-तन्त्र आदि का वर्णन है ।

प्रश्न १३९—पूर्वनामक दृष्टिवाद अंग में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—समस्त पूर्वों में ९५५०५००० पद हैं । इसके उत्पादपूर्व आदि १४ भेद हैं, उनके बिषयों के विवरण में पूर्वों का विषय जान लिया जाता है ।

प्रश्न १४०—उत्पादपूर्व में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें एक करोड़ पद हैं । इसमें प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है ।

प्रश्न १४१—अग्रायणीपूर्व में कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ९६ लाख पद हैं और इसमें ५ अस्तिकाय, ६ द्रव्य, ७ तत्त्व, ७०० सुनय, ७०० दुर्नय आदि का वर्णन है । यह विषय द्वादशांग का एक मुख्य विषय है ।

प्रश्न १४२—वीर्यानुवादपूर्व में कितने पद हैं और किस बात का वर्णन है ?

उत्तर—इस पूर्व में ७० लाख पद हैं, इसमें आत्मा की शक्ति, परपदार्थ की शक्ति, द्रव्य गुण पर्याय की शक्ति, काल की शक्ति, तपस्या की शक्ति आदि अनेक प्रकार की शक्तियों का वर्णन है ।

प्रश्न १४३—अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व में किसका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इस पूर्व में स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य आदि सप्तभंगी का वर्णन है जिससे द्रव्य का स्वरूप ज्ञात होता है । इसमें ६० लाख पद हैं ।

प्रश्न १४४—ज्ञानप्रवाद पूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इस पूर्व में पांचों सम्यग्ज्ञान और तीनों मिथ्याज्ञानों के स्वरूप, भेद, विषय, फल आदि का वर्णन है । इसमें ९९९९९९९ पद हैं (एक कम एक करोड़ पद हैं ।)

प्रश्न १४५—सत्यप्रवादपूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—शब्दोच्चारण के ८ स्थान, ५ प्रयत्नों का, वचन के भेद, बारह प्रकार की भाषा, दस प्रकार के सत्यवचन, अनेक असत्यवचन, वचनगुप्ति, मौन आदि अनेक वचन सम्बंधी विषयों का वर्णन है । इसमें १ करोड़ ६ पद हैं ।

प्रश्न १४६—आत्मप्रवादपूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें आत्मतत्त्वसम्बंधी विषयों का वर्णन है । जैसे आत्मा किसे करता है, किसे भोगता है, आत्मा का शुद्ध स्वरूप क्या है आदि । इसमें २६ करोड़ पद हैं ।

प्रश्न १४७—कर्मप्रवादपूर्व में किसका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें कर्म की अनेक अवस्थाओं का वर्णन है । जैसे—कर्मों के मूल भेद कितने है ? उत्तर भेद कितने हैं ? बंध, उदय, उदीरणा कैसे होती है आदि । इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं ।

प्रश्न १४८—प्रत्याख्यानपूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व पुरुष के संहनन के अनुसार सदोष वस्तु का त्याग, उपवासविधान, व्रत आदि का वर्णन है । इसमें ८४ लाख पद हैं ।

प्रश्न १४९—विद्यानुवादपूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—विद्यानुवाद में अंगुष्ठप्रसेन आदि ७०० अल्पविद्या और रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओं के स्वरूप, सामर्थ्य, साधनविधि और मन्त्र-तन्त्र का तथा सिद्ध विद्याओं के फल का वर्णन है । इसमें एक करोड़ दस

लाख पद हैं ।

प्रश्न १५०—कल्याणवादपूर्व में कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस पूर्व में २६ करोड़ पद हैं और इसमें तीर्थंकरों के पंचकल्याणक का, षोडश कारण भावनाओं का, ग्रहण, शकुन आदि के फलों का वर्णन है ।

प्रश्न १५१—प्राणानुवादपूर्व में किस बात का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें आयुर्वेद सम्बन्धी चिकित्सा, नाड़ीगति, औषधियों के गुणा अवगुण आदि सर्वविषयों का वर्णन है । इसमें १३ करोड़ पद हैं ।

प्रश्न १५२—क्रियाविशाल पूर्व में किन बातों का वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—संगीत, काव्य, अलंकार, कला, शिल्पविज्ञान, गर्भाधानादि क्रिया आदि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का इसमें वर्णन है । इसमें ९ करोड़ पद हैं ।

प्रश्न १५३—लोकबिन्दुसार पूर्व में कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस पूर्व में १२ करोड़ ५० लाख पद हैं । इसमें तीनों लोकों का स्वरूप, मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष प्राप्त करने के कारण, ध्यान आदि का वर्णन है ।

प्रश्न १५४—पूर्ण श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्ण श्रुतज्ञान श्रुतकेवली के होता है । द्वादशांग के पाठी व ज्ञाता तो इन्द्र, लौकान्तिकदेव व सर्वार्थसिद्धि के देव भी होते हैं, किन्तु अंगबाह्य से अपरिचित होने से वे श्रुतकेवली नहीं कहलाते । श्रुतकेवली निर्ग्रन्थ साधु ही हो सकते हैं ।

प्रश्न १५५—श्रुतज्ञान क्या सर्वथा परोक्ष ही होता है या किसी प्रकार प्रत्यक्ष भी हो सकता है ?

उत्तर—शब्दात्मक श्रुतज्ञान तो सर्व परोक्ष ही है, स्वर्ग आदि बाह्य विषय ज्ञान भी परोक्ष ही है । मैं सुख-दुःखादिरूप हूँ, ज्ञानरूप हूँ, यह ज्ञान ईषत् परोक्ष है । शुद्धात्माभिमुख स्वसम्वेदनरूप ज्ञान प्रत्यक्ष है, हाँ केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष है ।

प्रश्न १५६—यदि श्रुतज्ञान क्वचित् प्रत्यक्ष है तो "आद्ये परोक्षम्" इस सूत्र से विरोध आ जायेगा ?

उत्तर—"आद्ये परोक्षम्" यह उत्सर्ग कथन है । जैसे मतिज्ञान परोक्ष होकर भी अपवादस्वरूप, सांव्यवहारिक को प्रत्यक्ष भी माना है, वैसे श्रुतज्ञान परोक्ष होकर भी अपवादस्वरूप अन्तर्ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाता है ।

प्रश्न १५७—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से व वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से मूर्त वस्तु की आत्मीय शक्ति से एकदेश प्रत्यक्ष जानने को अवधिज्ञान कहते हैं । अवधि मर्यादा को कहते हैं । जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लेकर जाने उसे अवविज्ञान कहते हैं । अवधिज्ञान से पहिले के सब ज्ञान भी मर्यादा के भीतर ही जानते हैं ।

प्रश्न १५८—इससे तो मनःपर्ययज्ञान मर्यादा रहित जानने वाला हो जायेगा ?

उत्तर—नहीं, मनःपर्ययज्ञान भी अवधिज्ञान से पहिले का ज्ञान है, क्योंकि वास्तव में ज्ञानों के नाम इस क्रम से हैं—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) मनःपर्ययज्ञान, (४) अवधिज्ञान, (५) केवलज्ञान ।

प्रश्न १५९—सूत्र में व इस गाथा में तो "मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्" ऐसा क्रम दिया है ।

उत्तर—मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी संन्यासी मुनि के ही होता है, इस विशेष प्रयोजन को दिखाने के लिये मनःपर्ययज्ञान व अवधिज्ञान के बाद ओर केवलज्ञान से पहिले लिखा गया है ।

प्रश्न १६०—अवधिज्ञान का दूसरा अर्थ भी कोई है ?

उत्तर—है । अबाग्धानादवधि: इस व्युत्पत्ति के अनुसार अवधिज्ञान का यह अर्थ है जो नीचे विशेष क्षेत्र लेकर जावे सो अवधिज्ञान है । अवधिज्ञान का क्षेत्र नीचे विशेष होता है, ऊपर कम होता है । पूर्ण अवधिज्ञान की बात विशेष है ।

प्रश्न १६१—अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञान के २ भेद है—(१) गुणप्रत्यय अवधिज्ञान, (२) भवप्रत्यय अवधिज्ञान । गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य, तिर्यञ्चों का कहलाता है । भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकियों के होता है ।

प्रश्न १६२-—क्या अवधिज्ञान के अन्य प्रकार से भी भेद हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञान के ३ भेद हैं—(१) देशाववि, (२) परमावधि और (३) सर्वावधि । देशावधि चारों गतियों में हो सकता है । परमावधि और सर्वावधि मनुष्य के ही और तद्भव मोक्षगामी के ही होते हैं ।

प्रश्न १६३—अवधिज्ञान के और भी अन्य प्रकार से भेद हैं क्या ?

उत्तर—अवधिज्ञान के ६ भेद है—१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित, (६) अनवस्थित ।

प्रश्न १६४—इन सब भेदी के स्वरूप क्या हैं ?

उत्तर—इन सब भेदों के स्वरूप आदि जानने के लिये गोम्मठसार जीवकाण्ड आदि सिद्धान्त ग्रन्थ देखें । इस टीका में विस्तारभय से नहीं लिखा जा रहा है ।

प्रश्न १६५—मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान इन्द्रिय व मन की सहायता बिना आत्मीय शक्ति से दूसरों के मन में तिष्ठते हुये विकल्प को व विकलागत रूपी पदार्थ को एकदेश स्पष्ट जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न १६६—क्या मनःपर्ययज्ञान मन के अवलम्बन से प्रकट नहीं होता ?

उत्तर—मन:पर्ययज्ञानोपयोग होने से पहिले ईहामतिज्ञान होता है और ईहामतिज्ञान मन के अवलम्बन से प्रकट होता है । इस तरह मनःपर्ययज्ञान से पहिले तो मन का अवलम्बन है, किन्तु मन:पर्ययज्ञानोपयोग के समय मन का अवलम्बन नहीं है ।

प्रश्न १६७—मन:पर्ययज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—मनःपर्ययज्ञान के २ भेद हैं—(१) ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान, (२) विपुलमतिमन:पर्ययज्ञान ।

प्रश्न १६८—ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मनःपर्ययज्ञान पर के मन में स्थित सरल सीधी बात को जाने वह ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है ।

प्रश्न १६९—विपुलमतिमन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मनःपर्ययज्ञान पर के कुटिल मन में भी स्थित, अर्धचिन्तित, भविष्य में विचारी जाने वाली, भूतकाल में विचारी गई आदि बातों को जाने वह विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान है ।

प्रश्न १७०—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वतंत्रता से केवल आत्मशक्ति द्वारा त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्यों को सर्वदेश प्रत्यक्ष जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान सर्व प्रकार उपादेयभूत है ।

प्रश्न १७१—इस ज्ञान की उत्पत्ति का साधन क्या है ?

उत्तर—निज श्रद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप एकाग्र ध्यान केवलज्ञान की उत्पत्ति का साधन है ।

उत्थानिका—अब उक्त ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के वर्णन का नयों से विभाग करते हुए उपसंहार करते हैं—

गाथा ६

अट्ठ चदुणाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।।६।।

अन्वय—ववहारा अट्ठ णाणं चदु दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं, पुण सुद्धणया सुद्धं दंसणं णाणं जीवलक्खणं ।

अर्थ—व्यवहारनय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन सामान्य रूप से जीव का लक्षण कहा गया है, परन्तु शुद्धनग से शुद्ध (निरपेक्ष) दर्शन ज्ञान जीव का लक्षण है ।

प्रश्न १—व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो बुद्धि, पर्याय, भेद, संयोग को विषय करे उसे व्यवहारनय कहते हैं ।

प्रश्न २—आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन जीव के लक्षण व्यवहारनय से क्यों हैं ?

उत्तर—केवलज्ञान और केवलदर्शन तो शुद्ध पर्याय है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन ये अशुद्ध अर्थात् अपूर्ण पर्यायें हैं । अत: इनको जीव का लक्षण कहना व्यवहारनय से ही बनता है ।

प्रश्न ३-—केवलज्ञान, केवलदर्शन किस व्यवहारनय जीव का लक्षण है ?

उत्तर—केवलज्ञान व केवलदर्शन शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय से जीव का लक्षण है । इस प्रसंग में इस नय का दूसरा नाम अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है । केवलज्ञान और केवलदर्शन निरपेक्ष पूर्ण स्वाभाविक शुद्ध पर्याय है ।

प्रश्न ४—मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान व चक्षुर्दर्शनादिक तीन दर्शन किस व्यवहारनयले जीव के लक्षण माने गये हैं ?

उत्तर—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय—ये चार ज्ञान और आदि के ३ दर्शन अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय से जीव के लक्षण कहे गये हैं । इस नय का दूसरा नाम उपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है । ये ज्ञान व दर्शन, ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण यथार्थ कुछ प्रकट हैं इसलिये सद्भूत हैं, किन्तु कारणवश अपूर्ण हैं, अत: अशुद्ध अथवा उपचरित हैं, पर्यायें हैं, अत: व्यवहारनय के विषय हैं ।

प्रश्न ५—कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान किस व्यवहारनय से जीव के लक्षण हैं ?

उत्तर—ये कुज्ञान उपचरितासद्भूतव्यवहार से जीव के लक्षण हैं । ये कुज्ञान मिथ्यात्व के उदयवश होते हैं, इसलिये उपचरित हैं, विकृत भाव हैं । अत: असद्भूत हैं और पर्यायें हैं, इस कारण व्यवहारनय के विषय हैं ।

प्रश्न ६—ये सामान्य से जीव के लक्षण हैं, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—ये बारह प्रकार के उपयोग समूह रूप में जीव के लक्षण कहे जा रहे हैं । अत: इसे व्यवहारनय

से कहने पर भी संसारी या मुक्त जीव के लक्षण हैं, ऐसी विवक्षा नहीं है ।

प्रश्न ७—उपयोग बिना तो जीव रहता ही नहीं है, फिर ये उपयोग व्यवहारनय में क्यों कहे ?

उत्तर—उपयोग अर्थग्रहण के व्यापार को कहते हैं । यह उपयोग चाहे शुद्ध भी हो तो भी एक समय में जो जाननवृत्ति है वही दूसरे समय में नहीं है । दूसरे समय में दूसरी ही उस समय की जाननवृत्ति है । इसी कारण उपयोग जीव का लक्षण व्यवहार से ही है, क्योंकि उपयोग त्रैकालिक स्वभाव नहीं है ।

प्रश्न ८—उपयोग कितनी प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—उपयोग ३ प्रकार के होते हैं—(१) शुद्ध, (२) शुभ और (३) अशुभ ।

प्रश्न ९—शुद्ध उपयोग कौन है ?

उत्तर—केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दो शुद्ध उपयोग हैं ।

प्रश्न १०—शुभ उपयोग कौन हैं ?

उत्तर—मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान और चक्षुर्दर्शनादिक ३ दर्शन, ये शुभ उपयोग हैं ।

प्रश्न ११—अशुभ उपयोग कितने और कौन-कौन हैं ?

उत्तर—कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान—ये तीन कुज्ञान अशुभ उपयोग हैं ।

प्रश्न ११—शुद्धनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अभिप्राय अखण्ड निरपेक्ष त्रैकालिक शुद्धस्वभाव को जाने उसे शुद्धनय कहते हैं ।

प्रश्न १२—शुद्ध दर्शन का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—शुद्ध दर्शन सहज दर्शनगुण याने दर्शनसामान्य है जो क्रमशः अनेक दर्शनोपयोग पर्यायरूप परिणम करके भी किसी दर्शनोपयोगरूप नहीं रहता ।

प्रश्न—शुद्ध ज्ञान का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान ज्ञानसाम्राज्य अर्थात् सहज ज्ञानगुण को कहते हैं । यह शुद्ध ज्ञान क्रमशः अनेक ज्ञानोपयोगरूप परिणम करके भी किसी ज्ञानोपयोगरूप नहीं रहता ।

प्रश्न १५—यह शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन शुद्धनय से क्यों जीव का लक्षण है ?

उत्तर—शुद्धनय पर्याय की अपेक्षा न करके बनता है और यह शुद्ध दर्शन और ज्ञान भी पर्याय की अपेक्षा न करके प्रतिभास होता है, अतः शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान जीव के लक्षण शुद्धनय से कहे गये हैं ।

प्रश्न १६—उक्त चार नयों से कहे गये लक्षणों में किस नय से देखे गये जीव के लक्षण की दृष्टि उपादेय है ?

उत्तर—उक्त चार प्रकार के लक्षणों में से शुद्धनय से ज्ञात हुये जीव के लक्षण की दृष्टि उपादेय है ।

प्रश्न १७—शुद्धनय से जीव के लक्षण की दृष्टि क्यों उपादेय है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान व दर्शन सहज शुद्ध, निर्विकार, अनाकुलस्वभाव, ध्रुवपारिणामिक भाव हैं । यह उपादेयभूत शाश्वत सहजानन्दमय अक्षय सुख का उपादान कारण है । शुद्ध की दृष्टि से शुद्ध पर्याय प्रकट

होती है, निर्विकार की दृष्टि से निर्विकार पर्याय प्रकट होती है, ध्रुव की दृष्टि से ध्रुव पर्याय प्रकट होती है । अत: सहज शुद्ध निर्विकार ध्रुव शुद्ध ज्ञान दर्शन की दृष्टि उपादेय है ।

प्रश्न १८—शुद्ध ज्ञान व दर्शन की दृष्टि भी तो एक पर्याय है, फिर यह दृष्टि क्यों उपादेय है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान दर्शन की दृष्टि भी पर्याय है, इसलिये इस दृष्टि की दृष्टि नहीं करना चाहिये, किन्तु शुद्ध ज्ञानदर्शन परमपारिणामिक भाव है, अत: शुद्ध ज्ञानदर्शन अर्थात् शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन करना चाहिये, यही "शुद्धज्ञान दर्शन की दृष्टि उपादेय है" इसका तात्पर्य है ।

इस प्रकार "जीव उपयोगमय है" इस अर्थ के व्याख्यान का अधिकार समाप्त करके जीव अमूर्त है, इसका वर्णन करते हैं ।

गाथा ७

वण्णरस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ।।७।।

अन्वय—णिच्चया जीवे पंच वण्ण रस दो गंधा अट्ठ फासा णो संति तदो असुत्ति, ववहारा बंधादो मुत्ति ।

अर्थ—निश्चयनय से जीव में पांच वर्ण, ५ रस, दो गंध, ८ स्पर्श नहीं हैं, इसलिये जीव अमूर्त है । व्यवहारनय से कर्मबन्ध होने के कारण जीव मूर्तिक है ।

प्रश्न १—वर्ण किसे कहते हैं?

उत्तर—वर्ण्यते अवलोक्यते चक्षुरिन्द्रियेन यः सः वर्णः । चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा जो देखा जाता है उसे वर्ण कहते हैं ।

प्रश्न २—वर्ण द्रव्य है कि गुण है या पर्याय?

उत्तर—वर्ण द्रव्य नहीं है, वर्ण सामान्य गुण है । वर्ण गुण के परिणमन वर्ण पर्याय हैं ।

प्रश्न ३—वर्णगुण के कितने परिणमन हैं?

उत्तर—वर्णगुण की पर्यायें असंख्यात प्रकार की हैं, किन्तु उन पर्यायों को सदृश जातियों में संक्षिप्त करके देखा जावे तो पांच पर्यायें हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त, (४) पीत और (५) श्वेत ।

प्रश्न ४—ये पांचों पर्यायें एक साथ एक द्रव्य में रह सकती हैं क्या?

उत्तर—एक द्रव्य में एक वर्ण पर्याय ही रह सकती है । एक वर्ण की ही बात नहीं प्रत्येक द्रव्य में जितने गुण होते हैं उनमें प्रत्येक गुण की एक-एक पर्याय ही एक समय में उस द्रव्य में होती है ।

प्रश्न ५—रस किसे कहते हैं?

उत्तर—रस्यते इति रसः । जो रसनाइन्द्रिय के द्वारा स्वादा जाये उसे रस कहते हैं । यह रससामान्य तो गुण है और रसपरिणमन पर्याय हैं ।

प्रश्न ६—रस गुण के कितने परिणमन हैं?

उत्तर—संक्षेप में रस गुण के परिणमन पाँच हैं—(१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषाय, (४) अम्ल याने खट्टा और (५) मधुर अर्थात् मीठा ।

प्रश्न ७—गन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—गन्ध्यते इति गन्धः । घ्राणेन्द्रिय के द्वारा जो सूंघा जाये सो गन्ध है । गन्धसामान्य तो गुण है और गन्ध गुण के परिणमन पर्याय हैं ।

प्रश्न ८—गन्ध गुण के कितने परिणमन हैं?

उत्तर—गन्ध गुण के परिणमन दो प्रकार के हैं—(१) सुगन्ध, (२) दुर्गन्ध ।

प्रश्न ९—स्पर्श किसे कहते हैं?

उत्तर—'स्पृश्यते इति स्पर्श:' इन्द्रिय के द्वारा छुवा जाये उसे स्पर्श कहते हैं । स्पर्श सामान्य तो गुण है और स्पर्श गुण के परिणमन पर्यायें हैं ।

प्रश्न १०—स्पर्शगुण की कितनी पर्यायें हैं?

उत्तर—स्पर्श गुण की ८ पर्यायें है—(१) स्निग्ध, (२) रूक्ष, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) गुरु, (६) लघु, (७) मृदु और (८) कठोर ।

प्रश्न ११—स्पर्श गुण की पर्याय एक समय में एक द्रव्य में एक ही रहती है या अनेक?

उत्तर—उक्त ८ पर्यायों में से ४ पर्यायें तो आपेक्षिक हैं—(१) गुरु, (२) लघु, (३) मृदु और (४) कठोर । ये स्कंध पर्यायों में ही पाये जाते हैं इनका आधारभूत द्रव्य में कोई गुण नहीं है, केवल स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा ये समझ में आते हैं सो ये स्पर्शगुण की पर्यायें उपचार से कही जाती हैं । आदि की चार पर्यायों में गुण पर्यायपना है ।

प्रश्न १२—स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण क्या ये चारों पर्यायें एक द्रव्य में एक साथ रहती हैं या क्रम से?

उत्तर—एक द्रव्य में (१ परमाणु में) इन चार में से दो रहती हैं स्निग्ध रूक्ष में से एक व शीत उष्ण में से एक ।

प्रश्न १३—एक स्पर्शगुण की २ पर्यायें एक साथ कैसे रह सकती हैं?

उत्तर—भेदविवक्षा से वास्तव में एक परमाणु द्रव्य में एतद्विषयक दो गुण हैं—एक गुण के परिणमन तो स्निग्ध, रूक्ष हैं और दूसरे गुण के परिणमन शीत, उष्ण हैं । परन्तु ये पर्यायें एक स्पर्शनइन्द्रिय के द्वारा जानी जाती हैं । अत: इन सबको एक स्पर्श गुणा के परिणमन कहा जाता है ।

प्रश्न १४—उन दोनों स्पर्श गुणों के नाम क्या हैं?

उत्तर—इन दोनों स्पर्श गुणों के नाम उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी एक गुण की एक ही पर्याय होती है । इस अकाट्य नियम के कारण दो गुण सिद्ध ही हैं । जैसे एक चैतन्य गुण के दो परिणमन है—(१) ज्ञानोपयोग, (२) दर्शनोपयोग । ये दोनों उपयोग एक साथ होते हैं, अत: दो गुण सिद्ध होते हैं । एक गुण का नाम है ज्ञान और दूसरे गुण का नाम है दर्शन । चेतनकार्य दोनों का होने से इन दोनों गुणों का एक अभेद नाम चैतन्य है । 'इसी प्रकार स्पर्श गुण का भी दो प्रकार परिणमन जानना ।'

प्रश्न १५—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग छद्मस्थों में तो क्रम से होता है, फिर ये दो गुणों के परिणमन कैसे हुए?

उत्तर—छद्मस्थों में यद्यपि इनका उपयोग एक साथ नहीं है तो भी ज्ञानगुण और दर्शनगुण दोनों का परिणमन सदैव होता रहता है । हाँ छद्मस्थ उपयोग क्रम से लगा पाता है ।

प्रश्न १६—उक्त बीसों पर्याय निश्चय से आत्मा में क्यों नहीं हैं?

उत्तर—इन बीसों पर्यायों का और उनके आधारभूत चारों गुणों का व्याप्यव्यापक भाव पुद्गल द्रव्य के साथ है, आत्मा के साथ नहीं । इस कारण आत्मा में निश्चय से ये वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं ।

प्रश्न १७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श न होने से आत्मा अमूर्त क्यों है ?

उत्तर—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का नाम मूर्त है । यह मूर्त जहाँ नहीं, वह अमूर्त है ।

प्रश्न १८—यदि आत्मा अमूर्त है तो उसके कर्मबन्ध कैसे होता है ?

उत्तर—संसारी आत्मा व्यवहारनय से मूर्त है, अत: इस मूर्त आत्मा के कर्मबन्ध हो जाता है ।

प्रश्न १९—संसारी आत्मा किस कारण से मूर्त है ?

उत्तर—अनादि परम्परा से चले आये कर्मों के बन्धन के कारण आत्मा मूर्त है ।

प्रश्न २०—यदि आत्मा व्यवहारनय से मूर्त है तो कर्मबन्ध भी व्यवहार से ही होगा, निश्चय से नहीं होगा ?

उत्तर—ठीक है । कर्मबन्ध भी व्यवहार से है, निश्चय से नहीं है । निश्चयनय तो केवल एक द्रव्य को या एक शुद्ध स्वभाव को देखता है ।

प्रश्न २१—यदि कर्मबन्ध व्यवहार से है तो उसका फल दुःख भी व्यवहार से होता होगा ?

उत्तर—यह भी ठीक है । आत्मा के दुःख भी व्यवहार से हैं । निश्चयनय से तो आत्मा सुख दुःख के विकल्प से रहित शुद्ध ज्ञायकभावरूप जाना जाता है ।

प्रश्न २२—यदि दुःख भी व्यवहार से है तो कर्मबन्ध के दूर करने का उद्यम क्यों करना चाहियें ?

उत्तर—जिसे व्यवहार का दुःख नहीं चाहिये उसे व्यवहार का कर्मबन्धन हटाने का उद्यम करना ही चाहिये । हाँ, जिसे व्यवहार का दुःख इष्ट हो वह व्यवहार का कर्मबन्ध न हटाये । ऐसे जीव तो संसार में अब भी अनन्तानन्त हैं ।

प्रश्न २३—किस व्यवहारनय से आत्मा मूर्तिक है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आत्मा मूर्तिक है । ऐसी मूर्तिकता अनादि परम्परा से है अत: अनुपचरित है, मूर्तिकता स्वरूप में नहीं है इसलिये असद्भूत है और इसमें कर्मसंयोग की अपेक्षा है इसलिये व्यवहार है ।

प्रश्न २४—तब संसार अवस्था में जीव को मूर्त ही माना जावे, अमूर्त नहीं मानना चाहिये ।

उत्तर—संसार अवस्था में यह जीव कथंचित् मूर्त है और कथंचित् अमूर्त है । बन्ध के प्रति एकत्व होने से यह व्यवहारनय से मूर्त है और अपने स्वरूप से अमूर्त है । निश्चय से आत्मा चैतन्यमात्र है, इसमें वर्ण, रस, गन्ध व स्पर्श नहीं हैं, इसलिये अमूर्त है ।

प्रश्न २५—आत्मा कथंचित् मूर्त व अमूर्त है ऐसा जानकर हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर—इस अमूर्तस्वरूप आत्मा की दृष्टि उपलब्धि के न होने से यह आत्मा मूर्त बनकर चतुर्गति के दुःखों को भोगता है । अत: मूर्त विषयों का त्याग करके, पर्यायबुद्धि को छोड़कर शुद्धचैतन्यस्वभावमात्र अमूर्त आत्मा का ध्यान करना चाहिये ।

इस प्रकार "जीव अमूर्त है" इस अर्थ के व्याख्यान का अधिकार समाप्त करके "जीव कर्ता है" इसका

वर्णन करते हैं—

गाथा ८

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ।।८।।

अन्वय—आदा ववहारदो पुग्गल कम्मादीणं कत्ता, दु णिच्चयदो चेदणकम्माण कत्ता । सुद्धणाया सुद्धभावाणं कत्ता ।

अर्थ-—आत्मा व्यवहारनय से पुद्गलकर्मादि का कर्ता है, परन्तु निश्चयनय से चेतनकर्म का कर्ता है और शुद्धनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता है ।

प्रश्न १—पुद्गलकर्म आदि में आदि शब्द से और किन-किन का ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर—आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक, आहारक—इन तीन शरीर के योग्य नोकर्म और आहारादि ६ पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म रूप पुद्गल का ग्रहण करना तथा घट, पट, मकान आदि बाह्य पदार्थों का ग्रहण करना ।

प्रश्न २—आत्मा पुद्गल कर्म का कर्ता किस व्यवहारनय से है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञानावरण आदि पुद्गल कर्मों का कर्ता अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से है । ज्ञानावरणादि कर्मों का आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बंध है और जब तक सम्बंध है तब तक जहाँ आत्मा की गति हो वहीं उनकी गति है आदि । आत्मा जब कषायभाव करता है तब ये कर्मरूप परिणमते ही हैं । इन कारणों से यह कर्तृत्व अनुपचरित है । कर्म भिन्न पदार्थ हैं, अत: असद्भूत हैं । भिन्न पदार्थ के प्रति कर्तृत्व देखा जा रहा है सो व्यवहार है ।

प्रश्न ३—शरीर और पर्याप्त के योग्य पुद्गलों का कर्ता आत्मा किस नय से है ?

उत्तर—शरीरादि का भी कर्ता आत्मा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से है । ये पुद्गल भी आत्मा के एकक्षेत्रावगाह में है और जब तक इनका आत्मा से सम्बंध है तब तक आत्मा की गति आदि के साथ इनकी गति आदि है, अत: अनुपचरित कर्तृत्व है, भिन्न पदार्थ हैं, इसलिए असद्भूत कर्तृत्व है तथा भिन्न पदार्थों का कर्तृत्व देखा जा रहा है, अत: व्यवहार है ।

प्रश्न ४-घट-पट आदि का कर्ता आत्मा किस नय से है ?

उत्तर—आत्मा घट-पट आदि का कर्ता उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से है । ये पदार्थ भिन्न क्षेत्र में हैं और बाह्यसम्बंध से भी पुथक् हैं । हाँ, आत्मा की चेष्टा के निमित और निमित्त के निमित्त, उपनिमित्तों का निमित्त पाकर षट-पट आदि निमित्त हो जाते हैं, इसलिये इन बाह्य पदार्थों का कर्तृत्व उपचरित है । भिन्न पदार्थ हैं, सो इनका कर्तृत्व असद्भूत है । पृथक् द्रव्यों में कर्तृत्व बताया जा रहा है, इसलिये व्यवहार है ।

प्रश्न ५—जब ये पदार्थ भिन्न हैं तब इनके प्रति ऐसा भी कर्तृत्व क्यों बन गया ?

उत्तर—आत्मा निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना से रहित होकर ही इन बाह्य पदार्थों का कर्ता बन जाता

है।

प्रश्न ६—पुद्गल कर्म क्या वस्तु है ?

उत्तर—जगत् में अनन्तानन्त कार्माणवर्गणायें हैं और प्रत्येक संसारी जीव के साथ विस्रसोपचय के रूप में अनन्त कार्माणवर्गणायें लगी हुई हैं । कार्माणवर्गणा का अर्थ है कर्मरूप बनने योग्य सूक्ष्म पुद्गल स्कंध । ये ही कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणत हो जाते हैं, जब जीव कषायभाव करता है ।

प्रश्न ७—जीव का कर्म के साथ तो गहरा सम्बन्ध है, फिर जीव को कर्म का असद्भूत व्यवहारनय से कर्ता क्यों कहा गया है ?

उत्तर—जीव का कर्म में अत्यन्ताभाव है । तीन काल में भी जीव का द्रव्य, प्रदेश, गुण और पर्याय कर्म में नहीं जा सकता और कर्म के द्रव्य प्रदेश, गुण और पर्याय जीव में नहीं जा सकते । हाँ, सहज निमित्तनैमित्तिक बात ही ऐसी हो जाती है कि जीव जब अपने कषायपरिणमन से परिणमता है तो कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणम जाती हैं तो भी अत्यन्ताभाव के कारण असद्भूतपना ही ठीक है ।

प्रश्न ८—चेतन कर्मों का जीव किस नय से कर्ता है ?

उत्तर—जीव अशुद्धनिश्चयनय से चेतनकर्मों का कर्ता है ।

प्रश्न ९—चेतनकर्म तो जीव की परिणति है, फिर उसका कर्ता जीव अशुद्धनय से क्यों है ?

उत्तर—चेतनकर्म का तात्पर्य है पुद्गल कर्म उपाधि को निमित्त पाकर रागादि विभाव रूप परिणमने वाला जीव का विभावपरिणमन । ये रागादिभाव जीव में स्वयं अर्थात् स्वभाव के निमित्त से नहीं होते, परद्रव्य के निमित्त से होते हैं, अतएव ये क्षणिक और विपरीत भाव याने अशुद्ध भाव हैं, किन्तु हैं ये जीव की ही पर्याय । इसी कारण जीव इन चेतनकर्मों का अशुद्ध निश्चयनय से कर्ता है ।

प्रश्न १०—रागादि भाव जब आत्मा के स्वभाव नहीं हैं तब जीव इन्हें करता क्यों है ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव निष्क्रिय अभेद चैतन्य है । इस निजस्वभाव की दृष्टि, उपलब्धि से रहित होकर यह जीव रागादि भावकर्मों का कर्ता होता है ।

प्रश्न ११—जिन कर्मों के उदय को निमित्त पाकर यह भावकर्म हुआ वे द्रव्यकर्म कैसे बने ?

उत्तर—पूर्व के भावकर्मों को निमित्त पाकर द्रव्यकर्म की रचना हुई ।

प्रश्न १२—इस तरह तो इतरेतराश्रय दोष आ जावेगा, क्योंकि जब द्रव्यकर्म हो तो भावकर्म बने और जब भावकर्म हो तो द्रव्यकर्म बने ?

उत्तर—इसमें इतरेतराश्रय दोष नहीं आता, क्योंकि पूर्व का भावकर्म पूर्वबद्ध द्रव्यकर्म के उदय से होता है और वह द्रव्यकर्म भी पूर्व के भावकर्म के निमित्त से बंधता है । इस तरह भावकर्म और द्रव्यकर्म में बीज वृक्ष की तरह या पितापरम्परा की तरह अनादि परम्परा सम्बन्ध है ।

प्रश्न १३—शुद्ध भावों का कर्ता जीव किस शुद्धनय से है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनय से जीव शुद्ध भावों का कर्ता है ।

प्रश्न १४—शुद्ध भाव से यहां क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मलिनता से रहित अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि शुद्ध भाव हैं ।

प्रश्न १५—इन शुद्ध भावों का कर्ता कौन जीव है ?

उत्तर—शुद्ध भावों का कर्ता पूर्ण शुद्धनिश्चयनय से तो मुक्त जीव याने अरहंत और सिद्धप्रभु है । भावनारूप एकदेश शुद्धनिश्चयनय से छद्मस्थावस्था में अन्तरात्मा शुद्ध भावों का कर्ता है ।

प्रश्न १६—शुद्ध भावों का कर्ता जीव शुद्ध निश्चयनय से क्यों है ?

उत्तर—अनन्तज्ञानादि शुद्ध पर्यायें कर्म उपाधि के अभाव में होती हैं और स्वभाव के अनुरूप है, अत: इनका कर्तृत्व शुद्ध है और जीव की ही परिणति है, अत: निश्चय से इनका कर्तृत्व है । इस प्रकार जीव अनन्तज्ञानादि शुद्ध भावों का शुद्धनिश्चयनय से कर्ता है ।

प्रश्न १७—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव अकर्ता है । इस नय के अभिप्राय में निज में भी कर्ताकर्म भेद नहीं है । समस्त भेद, विकल्प, पर्याय की दृष्टि से रहित अखण्ड विषय परमशुद्ध निश्चयनय का है ।

प्रश्न १८—इस कर्तृत्व के प्रकरण से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—निरञ्जन, निष्क्रिय निज शुद्ध चैतन्य की भावना के अवलम्बन से तो शुद्ध भावों का कर्ता बन जाता है जिसका फल अनन्त सुख है और इस निज शुद्ध चैतन्य की भावना से रहित होकर रागादि विभावों का कर्ता होता है, जिसका फल घोर दु:ख है । सर्व दु:खों से मुक्त होने के लिये शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन लेना चाहिए ।

इस प्रकार "जीव कर्ता है" इस अर्थ के व्याख्यान का अधिकार समाप्त करके "जीव भोक्ता है" इसका वर्णन करते हैं—

गाथा ९

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफ्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ।।९।।

अन्वय—आदा ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफ्फलं पभुँजेदि, खु णिच्छयणयदो आदस्स चेदणभावं पभुँजेदि ।

अर्थ—आत्मा व्यवहारनय से सुख दुःखरूप पुद्गलकर्म के फल को भोगता है और निश्चयनय से अपने-अपने चेतनभाव को भोगता है ।

प्रश्न १—व्यवहार के कितने भेद हैं ?

उत्तर—व्यवहार के ४ भेद हैं—(१) उपचरित असद्भूतव्यवहार, (२) अनुपचरित असद्भूतव्यवहार, (३) उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार, (४) अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार । इनमें से उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार का नाम तो अशुद्धनिश्चयनय है और अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार का नाम शुद्ध निश्चयनय है ।

प्रश्न २—उपचरित असद्भूतव्यवहारनय से जीव किसको भोगता है ?

उत्तर—उपचरित असद्भूतव्यवहारनय से जीव इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों से उत्पन्न सुख दुःख को भोगता है अथवा विषयों को भोगता है । यहाँ "पदार्थों से उत्पन्न" इस अर्थ की मुख्यता है । विषयभूत पदार्थ बाह्य हैं और एकक्षेत्रावगाही भी नहीं, अतः इनका भोक्तृत्व उपचरित है पदार्थ अथवा विषयज सुख आत्मस्वभाव से विपरीत हैं, अतः असद्भूत है और पर्याय है, इसलिये व्यवहार है ।

प्रश्न ३—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से जीव सुख दुःखरूप पुद्गल कर्मों के फल को भोगता है । पुद्गल कर्म एकक्षेत्रावगाही हैं, अतः उनके फल का भोक्तृत्व अनुपचरित है । कर्म और कर्मफल आत्मस्वभाव से विपरीत है, अतः असद्भूत है, पर्याय है, अतः व्यवहार है ।

प्रश्न ४—निश्चयनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—निश्चयनय के ३ भेद हैं—(१) अशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय, (३) परमशुद्धनिश्चयनय । इनमें अशुद्धनिश्चयनय का प्रतिपादन उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है और शुद्धनिश्चयनय का प्रतिपादन अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार है ।

प्रश्न ५—अशुद्धनिश्चयनय से जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनय से जीव अशुद्ध चेतनभाव अर्थात् हर्ष-विषादादि परिणाम का भोक्ता है । हर्ष-विषादादि विभाव हैं, अतः अशुद्ध हैं, किन्तु हैं जीव के ही परिणमन, अतः निश्चयनय से हैं, पर्यायें हैं, अतः व्यवहार हैं । इस प्रकार जीव हर्षविषादादि अशुद्ध चेतनभाव का अशुद्धनिश्चयनय से भोक्ता है ।

प्रश्न ६—शुद्धनिश्चयनय से जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनय से जीव अनन्त सुख आदि निर्मल भावों का भोक्ता है । अनन्त सुख आदि जीव के स्वाभाविक शुद्ध भाव हैं, अत: इनका भोक्तृत्व शुद्धनिश्चयनय से है ।

प्रश्न ७—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनय से जीव अभोक्ता है, क्योंकि परमशुद्धनिश्चयनय की दृष्टि से भोक्ता भोग्य आदि कोई विकल्प भेद नहीं है । यह नय तो केवल, शुद्ध, निरपेक्ष स्वभाव को विषय करता है ।

प्रश्न ८—इस भोक्तृत्व के विवरण से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—व्यवहारनय से जो भोक्तृत्व बताया है वह तो असद्भूत ही है, इसलिये वस्तुस्वरूप जानकर यह प्रतीति हटा देनी चाहिये कि मैं विषयों से अथवा कर्मों से सुख या दुःख को भोगता हूँ ।

प्रश्न ९—तब मैं यह सुख दुःख किससे पाता हूं ?

उत्तर—सुख दुःख में अपने गुणों के परिणमन से पाता हूँ । कर्मोदय तो बाह्य निमित्त मात्र है और विषय केवल आश्रयमात्र है ।

प्रश्न १०—यह सुख दुःख क्यों उत्पन्न हो जाता है ?

उत्तर—निज शुद्ध चैतन्यस्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान एवं अनुचरण न होने से उपयोग अनात्मा की ओर जाता है और तब बाह्य पदार्थों का आश्रय बनाने से सुख दुःख का उसमें वेदन होने लगता है ।

प्रश्न ११—इस सुख दुःख का भोक्तृत्व कैसे मिटे ?

उत्तर—स्वाभाविक आनन्द का भोक्तृत्व होते ही सूक्ष्म भी सुख दुःख का भोक्तृत्व मिट जाता है ।

प्रश्न १२—जीव स्वाभाविक आनन्द का भोक्ता कैसे होता है ?

उत्तर—नित्य निरञ्जन अविकार चैतन्य परम स्वभाव की भावना से स्वाभाविक आनन्दरूप निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होती है ।

प्रश्न १३—यह आनन्द आत्मा के किस गुण की पर्याय है ?

उत्तर—आनन्द आत्मा के आनन्द गुण की पर्याय है ।

प्रश्न १४—सुख, दुःख किस गुण की पर्यायें हैं ?

उत्तर—सुख, दुःख भी आनन्द गुण की पर्यायें हैं । आनन्द गुण की तीन पर्यायें हैं—(१) आनन्द, (२) सुख और (३) दुःख । आनन्द तो स्वाभाविक परिणमन है और सुख एवं दुःख विकृत परिणमन है ।

प्रश्न १५—अनन्त सुख तो स्वाभाविक परिणमन माना गया है, फिर सुख को विकृत परिणमन कैसे कहा?

उत्तर—सुख का अर्थ है—ख-इन्द्रियों को, सु-सुहावना लगना । सो यह अशुद्ध परिणमन ही है, क्योंकि आत्मा तो इन्द्रियों से रहित है । दुःख का भी अर्थ है, ख—इन्द्रियों को, दु:—बुरा लगना । जैसे दुःख विकृत परिणमन है वैसे सुख भी विकृत परिणमन है । परन्तु सुख से परिचित प्राणियों पर दया करके आनन्द के स्थान में सुख शब्द रखकर अनन्त सुख शब्द से आचार्यों ने प्रतिपादन किया है । जिससे ये प्राणी "अनन्त

समृद्धि मुक्तावस्था में है" यह समझ जावे ।

प्रश्न १६—आनन्द शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—"आ समन्तात् नन्दनं आनन्दः ।" सर्व प्रकार सर्वप्रदेशों में सत्य समृद्धि होना आनन्द है । आत्मा की सत्य समृद्धि सुख दुःख से रहित परमनिराकुलता के अनुभव में है । एतदर्थ आनन्द के स्रोतरूप चैतन्यस्वभाव की निरन्तर भावना करना चाहिये ।

इस प्रकार "जीव भोक्ता है" इस अर्थ के व्याख्यान का अधिकार समाप्त करके "जीव स्वदेहपरिमाण है" इसका वर्णन करते हें—

गाथा १०

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ।।१०।।

अन्वय—चेदा ववहारा असमुहदो उवसंहारप्पसप्पदो अणुगुरुदेहपमाणो, वा णिच्चयणयदो असंखदेसो ।

अर्थ—आत्मा व्यवहारनय से समुद्घात के सिवाय अन्य सब समय संकोच और विस्तार के कारण अपने छोटे-बड़े शरीर के प्रमाण है और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेशों का धारक है ।

प्रश्न १—समुद्घात में यह जीव शरीर के प्रमाण क्यों नहीं रहता?

उत्तर—जिन कारणों से अथवा जिन प्रयोजनों के लिये समुद्घात होता है उनकी सिद्धि शरीर से भी बाहर आत्मप्रदेशों के रहने में है ।

प्रश्न २—समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर—अपने मूल शरीर को न छोड़कर और तैज सशरीर और कार्माणशरीर के प्रदेशों सहित आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है ।

प्रश्न ३—समुद्घात के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—समुद्घात के ७ प्रकार हैं—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) विक्रियासमुद्घात, (४) मारणान्तिकसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात, (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात ।

प्रश्न ४—वेदनासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्र वेदना के कारण मूल शरीर को न छोड़कर आत्मप्रदेशों का बाहर फैल जाना वेदनासमुद्घात है ।

प्रश्न ५—इस समुद्घात से क्या कोई लाभ भी होता है ?

उत्तर—वेदनासमुद्घात में जो आत्मप्रदेश तैजसकार्माणशरीर सहित बाहर फैलते हैं यदि उनसे किसी औषधि का स्पर्श हो जाये तो वेदना शान्त हो सकती है । औषधि का स्पर्श ही हो, ऐसा नियम नहीं है । वेदनासमुद्घात तो तीव्रवेदना के कारण हो जाता है ।

प्रश्न ६—वेदनासमुद्घात में आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते है ?

उत्तर—देहप्रमाण से तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते हैं । वेदनासमुद्घात से प्राय: प्राणी शरीर से निरोग हो जाया करते हैं ।

प्रश्न ७—कषायसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्र कषाय का उदय हो जाने से पर के घात के लिये मूलशरीर को न छोड़कर आत्मप्रदेशों का बाहर निकल जाना कषायसमुद्घात है ।

प्रश्न ८—कषायसमुद्घात से क्या पर का घात हो जाता है ?

उत्तर—इसका नियम नहीं है ।

प्रश्न ९—कषायसमुद्घात में आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते हैं ?

उत्तर—देहप्रमाण से तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते हैं ।

प्रश्न १०—विक्रियासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर या शरीर का अंग बढ़ाने के लिये अथवा अन्य शरीर बनाने के लिये आत्मप्रदेशों का मूल शरीर न छोड़कर बाहर निकल जाना विक्रियाससुद्घात है ।

प्रश्न ११—विक्रियासमुद्घात किनके होता है ?

उत्तर—विक्रियासमुद्घात देव व नारकियों के तो होता ही है, किन्तु विक्रियाऋद्धिधारी मुनीश्वरों के भी विक्रियासमुद्घात हो जाता है ।

प्रश्न १२—अन्य शरीर बनाने पर आत्मा अनेक क्यों नहीं हो जाते ?

उत्तर—अन्य शरीर बनाने पर भी मूलशरीर व अन्य शरीर तथा इसके अन्तराल में उसी एक आत्मा के प्रदेश फैले हुए होते हैं, अत: आत्मा एक ही है । हां, आत्मप्रदेशों का विस्तार वहाँ तक निरन्तर है ।

प्रश्न १३—मूलशरीर और उत्तरशरीर में क्रियायें तो अलग-अलग होती हैं, इसलिये क्या उपयोग अनेक मानने पड़ेंगे ?

उत्तर—नहीं, एक ही उपयोग से त्वरितगति होने के कारण दोनों शरीर में क्रियायें होती रहती हैं ।

प्रश्न १४—विक्रियासमुद्घात में आत्मप्रदेश कहां तक फैल जाते हैं ?

उत्तर—जिसका जितना विक्रियाक्षेत्र है और उसमें भी जितनी दूर तक विक्रिया की जा रही है उतनी दूर तक आत्मप्रदेश फैल जाते हैं ।

प्रश्न १५—मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—मरण समय में मूलशरीर को न छोड़कर जहाँ कहीं भी आयु बांधी हो वहाँ के क्षेत्र का स्पर्श करने के लिये आत्मप्रदेशों का बाहर निकल जाना मारणान्तिक समुद्घात है । मारणान्तिक समुद्घात एक दिशा को प्राप्त होता है ।

प्रश्न १६—मारणान्तिक समुद्घात में बाहर प्रदेश निकलने के बाद पुन: मूलशरीर में आते हैं अथवा नहीं ?

उत्तर—मारणान्तिक समुद्घात में जन्मक्षेत्र को स्पर्शकर आत्मप्रदेश अवश्य मूलशरीर में आते हैं । पश्चात् सर्वप्रदेशों से आत्मा निकलकर जन्मक्षेत्र में पहुंचकर नवीन शरीर अपना लेता है ।

प्रश्न १७—मारणान्तिकसमुद्घात क्या सभी मरने वाले जीवों के होता है या किसी-किसी के ?

उत्तर—मारणान्तिकसमुद्घात उन्हीं जीवों के हो सकता है जिन्होंने अगले भव की पहले से आयु बांध ली है और जिनके एतद्विषयक विलक्षण आतुरता होती है । इस समुद्घात की अपेक्षा त्रस जीव भी त्रसनाली से बाहर पाये जा सकते हैं ।

प्रश्न १८—तैजससमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—संयमी महामुनि के विशिष्ट दया उत्पन्न होने पर अथवा तीव्र क्रोध उत्पन्न होने पर उनके दायें अथवा बायें कन्धे से तैजसशरीर का एक पुतला निकलता है । उसके साथ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना तैजससमुद्घात है ।

प्रश्न १९—तैजससमुद्घात कितने तरह का होता है ?

उत्तर—तैजससमुद्घात दो तरह का होता है—(१) शुभ तैजससमुद्घात्, (२) अशुभतैजससमुद्घात ।

प्रश्न २०—शुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर—जब लोक को व्याधि, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित देखकर तैजस ऋद्धिधारी संयमी महामुनि के कृपा उत्पन्न होती है तब मुनि के दाहिने कन्धे से पुरुषाकार तेजस्वरूप एक पुतला निकलता है । वह व्याधि और दुर्भिक्ष आदि उपद्रव को नष्ट करके फिर मूलशरीर में प्रवेश कर जाता है । इसे शुभ तैजसशरीर कहते हैं ।

प्रश्न २१—शुभ तैजसशरीर का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—शुभ तैजसशरीर श्वेतरूप का सौम्य आकार वाला पुरुषाकार १२ योजन तक का विस्तार वाला तेजोमय होता है ।

प्रश्न २२—अशुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर—जब मन को अनिष्टकारी किसी कारण व उपद्रव को देखकर तैजस ऋधिधारी महामुनि के क्रोध उत्पन्न होता है तब सोची हुई विरुद्ध वस्तु को भस्म करने के लिये मुनि के बायें कंधे से तैजसशरीरमय पुतला निकलता है यह विरुद्ध वस्तु को भस्म करके और फिर उस ही संयमी मुनि को भस्म करके नष्ट हो जाता है । इसे अशुभतैजसशरीर कहते हैं ।

प्रश्न २३—अशुभतैजसशरीर का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—अशुभतैजसशरीर सिन्दूर की तरह लाल रंग का, बिलाव के आकार वाला, १२ योजन लम्बा, मूल में सूच्यंगुल के संख्यातभागप्रमाण चौड़ा और अन्त में ९ योजन चौड़ा तेजोमय होता है ।

प्रश्न २४—आहारकसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी तत्त्व में संदेह होने पर संदेह की निवृत्ति के अर्थ आहारकऋद्धिधारी महामुनि के मस्तक से एक हाथ का पुरुषाकार श्वेत रंग का केवलज्ञानी प्रभु के दर्शन के लिये आहारक शरीर निकलता है, उसके साथ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना आहारकसमुद्घात है । यह आहारकशरीर सर्वज्ञदेव के दर्शन कर मूलशरीर में प्रविष्ट हो जाता है । सर्वज्ञ प्रभु के दर्शन से तत्त्वसन्देह दूर हो जाता है । यह समुद्घात एक ही दिशा को प्राप्त होता है ।

प्रश्न २५—केवलिसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—आयुकर्म की स्थिति अत्यल्प रहने पर और शेष ३ अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक होने पर सयोगकेवली भगवान के आत्मप्रदेशों का दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण के प्रकार से बाहर निकलना होता है

वह केवलिसमुद्घात है ।

प्रश्न २६—केवलिसमुद्घात क्या सभी सयोगकेवली भगवान के होता है या किसी-किसी के?

उत्तर—जिन मुनिराजों के ६ माह आयु शेष रहने पर, केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन सयोगकेवलियों के केवलिसमुद्घात होता है । इसके अतिरिक्त कुछ आचार्यों के अन्य भी मत हैं । निष्कर्ष यह समझिये कि कुछ बिरलों को छोड़ सभी सयोगकेवलियों के समुद्घात होता है ।

प्रश्न २७—केवलिसमुद्घात में दण्डसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर—सयोगकेवली यदि आसीन हों तो आसन प्रमाण याने देह के त्रिगुण विस्तार प्रमाण और यदि खड्गासन से स्थित हों तो देह विस्तार प्रमाण चौड़े आत्मप्रदेश निकलते हैं और ऊपर से नीचे तक वातवलयों के प्रमाण से कम १४ राजू लम्बे फैल जाते हैं ।

प्रश्न २८—कपाटसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर—दण्डसमुद्घात के अनन्तर अगल बगल थोड़े हो जाते हैं । यदि भगवान पूर्वाभिमुख हों तो ऊपर, मध्य में, नीचे सर्वत्र वातवलयप्रमाण से कम ७-७ राजू प्रमाण आत्मप्रदेश फैल जाते हैं और यदि भगवान उत्तराभिमुख हों तो वातवलय प्रमाण से हीन ऊपर तो एक राजू, ब्रह्मक्षेत्र में ५ राजू, मध्य में १ राजू व नीचे ७ राजू प्रमाण चौड़े हो जाते हैं ।

प्रश्न २९—प्रतरसमुद्घात किस प्रकार होता है ?

उत्तर—इस समुद्घात में सामने व पीछे जितना लोकक्षेत्र बचा है उसमें वातवलय प्रमाण से हीन सर्वलोक में फैल जाते हैं ।

प्रश्न ३०—लोकपूरण समुद्घात में क्या होता है ?

उत्तर—इसमें आत्मप्रदेश वातवलय के क्षेत्र में भी फैलकर पूरे लोकप्रमाण प्रदेश हो जाते हैं ।

प्रश्न ३१—लोकपूरण समुद्घात के बाद प्रवेश-विधि किस प्रकार से है ?

उत्तर—लोकपूरण समुद्घात के बाद लौटकर प्रतरसमुद्घात होता है, फिर कपाट समुद्घात, फिर दण्डसमुद्घात, इसके बाद मूलशरीर में प्रवेश हो जाता है ।

प्रश्न ३२—समुद्घातों में समय कितना लगता है ?

उत्तर—केवलिसमुद्घात में तो ८ समय लगता है और शेष के ६ समुद्घातों में अन्तर्मुहूर्त समय लगता है ।

प्रश्न ३३—केवलिसमुद्घात में ८ समय कैसे लगता है ?

उत्तर—दण्ड में १, कपाट में १, प्रतर में १, लोकपूरण में १, फिर लौटते समय प्रतर में १, कपाट में १, दण्ड में १, फिर प्रवेश में १, इस प्रकार आठ समय लगता है ।

प्रश्न ३४—केवलिसमुद्घात से क्या फल होता है ?

उत्तर—केवलिसमुद्घात होने से शेष ३ अघातिया कर्मों की स्थिति घटकर आयुस्थितिप्रमाण स्थिति रह

जाती है ।

प्रश्न ३५—केवलिसमुद्घात होने का कारण क्या है ?

उत्तर—केवलिसमुद्घात स्वयं होता है, इसमें निमित्त कारण अघातिया कर्मों की स्थिति पूर्वोक्त प्रकार से विषम शेष रह जाना है ।

प्रश्न ३६—समुद्घात के सिवाय अन्य समयों में आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर—समुद्घात के सिवाय अन्य समयों में आत्मा व्यवहारनय से अपने-अपने छोटे या बड़े देह प्रमाण है ।

प्रश्न ३७—आत्मा देहप्रमाण ही क्यों है ?

उत्तर—आत्मा अनादि से निरन्तर देह धारण करता चला आया है उनमें यदि बड़े देह से छोटे देह में आता है तो संकोच स्वभाव के कारण उस छोटे देह के प्राण हो जाता है और यदि छोटे देह से बड़े देह में आता है तो विस्तार स्वभाव के कारण उस बड़े देह प्रमाण हो जाता है ।

प्रश्न ३८—देह से सर्वथा मुक्त होने पर आत्मा कितने प्रमाण रहता है ?

उत्तर—जिस देह से मुक्त हुआ उस देह प्रमाण यह मुक्त आत्मा मुक्ति अवस्था में रहता है ।

प्रश्न ३९—मुक्त होने पर आत्मा ज्ञान की तरह प्रदेशों से भी सर्वलोक में क्यों नहीं फैल जाता ?

उत्तर—देह से मुक्त होने के बाद संकोच विस्तार का कोई कारण न होने से आत्मा जिस प्रमाण था उस ही प्रमाण रह जाता है । ज्ञान भी सर्वलोक में नहीं फैलता, किन्तु ज्ञान आत्मप्रदेशों में ही रहकर समस्त लोक अलोक के आकार ज्ञानरूप से परिणम जाता है ।

प्रश्न ४०—किस व्यवहारनय से आत्मा देह प्रमाण है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से आत्मा देह प्रमाण है । यहाँ देह और आत्मा का एकक्षेत्रावगाह है इसलिये अनुपचरित है । देह का निज क्षेत्र देह में है, आत्मा का निज क्षेत्र आत्मा में है, इस प्रकार आत्मा व देह का परस्पर अत्यन्ताभाव होने से असद्भूत है । यह आकार पर्याय है, इसलिये व्यवहार है ।

प्रश्न ४१—निश्चयनय से आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा अपने असंख्यात प्रदेश प्रमाण है । यह प्रमाणता सर्वत्र सर्वदा इतनी ही रहती है ।

प्रश्न ४२—शरीर की अवगाहना कम से कम कितनी हो सकती है ?

उत्तर—कम से कम शरीर की अवगाहना उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है । उत्सेधांगुल प्राय: आजकल अंगुल प्रमाण होता है । इतना ही शरीर लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोदिया का होता है ।

प्रश्न ४३—शरीर की अवगाहना बड़ी से बड़ी कितनी हो सकती है ?

उत्तर—शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार याजन प्रमाण हो सकती है । इतना शरीर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य का होता है ।

प्रश्न ४४—मध्यम अवगाहना कितने प्रकार की है ?

उत्तर—जघन्य अवगाहना से ऊपर और उत्कृष्ट अवगाहना से नीचे असंख्यात प्रकार की मध्यम अवगाहना होती है ।

प्रश्न ४५—यह आत्मा देह में ही क्यों बसता चला आया है ?

उत्तर—देह में ममत्व होने के कारण देहों में बसता चला आया है । आयु स्थिति के क्षय के कारण किसी एक देह में चिरस्थायी नहीं रह सकता है तथापि देहात्मबुद्धि होने के कारण त्वरित अन्य देह को धारण कर लेता है । जन्म मरण के दुःख और देह के सम्बन्ध से होने वाले क्षुधा, तृषा, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वेदना आदि के दुःख इस देहात्मबुद्धि के कारण ही भोगने पड़ते हैं ।

प्रश्न ४६—देह से मुक्त होने के क्या उपाय हैं ?

उत्तर—देह से ममत्व हटावे, देह में आत्मबुद्धि न करना देह में मुक्त होने का मूल उपाय है ।

प्रश्न ४७—देहात्मबुद्धि दूर करने के लिये क्या पुरुषार्थ करना चाहिये ?

उत्तर—मैं अशरीर, अमूर्त, अकर्ता, अभोक्ता, शुद्ध चैतन्यमात्र हूं—इस प्रकार अपना अनुभव करे । इस परम पारिणामिक भावमय निज शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से जीव पहिले मोहभाव से मुक्त होता है, पश्चात् कषायों से मुक्त होता है, इनके साथ ही मोहनीय कर्म का क्षय हो जाता है । तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय का क्षय एवं अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन व अनन्तशक्ति का आविर्भाव हो जाता है । तत्पश्चात् शेष अघातिया कर्मों से व देह से सर्वथा मुक्त हो जाता है । इस सबका एक मात्र उपाय अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्य मात्र निज कारणपरमात्मा का अवलम्बन है ।

इस प्रकार “आत्मा स्वदेह प्रमाण है” इस अर्थ के व्याख्यान का अधिकार समाप्त करके जीव संसारस्थ है इसका वर्णन करते हैं—

गाथा ११

पुढविजलतेयवाऊ वणफ्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तस जीवा होंति संखादी ।।११।।

अन्वय—पुढविजलतेयवाऊ वणफ्फदी विविहए इंदा थावरे होंती संखादि विगतिगचदुपंचक्खा तस जीवा होंति ।

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायरूप नाना एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव हैं और शंख, पिपीलिका आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस जीव हैं ।

प्रश्न १—पृथ्वीकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनका पृथ्वी ही शरीर हो उन्हें पृथ्वीकाय कहते हैं । जो जीव मरकर पृथ्वी शरीर धारण करने के लिये मोड़े वाली विग्रहगति जा रहा हो, वह उस विग्रहगति वाला जीव भी पृथ्वीकाय है । इसका शुद्ध नाम पृथ्वी जीव है ।

प्रश्न २—पृथ्वीकाय की कितनी जातियां हैं ?

उत्तर—पृथ्वीकाय की ३६ जातियां है—(१) मृत्तिका, (२) बालुका, (३) शर्करा, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण, (७) लोह, (८) ताम्र, (९) रांगा, (१०) शीशा, (११) सुवर्ण, (१२) चाँदी, (१३) वज्र, (१४) हड़ताल, (१५) हिंगुल, (१६) मेनसिल, (१७) तूतिया, (१८) अंजन (१९) प्रवाल, (२०) भुड़भुड़, (२१) अभ्रक, (२२) गोमेद, (२३) रुचक, (२४) अङ्क, (२५) स्फटिक, (२६) लोहित प्रभ, (२७) वैडूर्य, (२८) चन्द्रकान्त, (२९) जलकान्त, (३०) सूर्यकान्त, (३१) गैरिक, (३२) चन्दनमणि , (३३) पन्ना (३४) पुखराज, (३५) नीलम, (३६) मसारगल्लन ।

प्रश्न ३—पृथ्वीकाय जीव के देह की कितनी अवगाहना हैं ?

उत्तर—घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण पृथ्वीकाय जीव के देह की अवगाहना हैं ।

प्रश्न ४—जलकाय किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका जल ही शरीर हो उन्हें जलकाय कहते हैं । जो जीव जलकाय में उत्पन्न होने के लिये मोड़े वाली विग्रहगति से जा रहा है उसे भी जलकाय कहते हैं । इसका शुद्ध नाम जलजीव है ।

प्रश्न ५-—जलकाय की कितनी जातियां है ?

उत्तर—जलकाय की अनेक जातियाँ हैं, जैसे—ओस, तुषार, कुहर, बिन्दु, शीकर, शुद्धजल, चन्द्रकान्त जल, घनोदक, ओला आदि ।

प्रश्न ६—जलकाय जीव के देह की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जलकाय जीव की अवगाहना होती है ।

प्रश्न ७—अग्निकाय किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका अग्नि ही शरीर हो उन्हें अग्निकाय कहते हैं । जो जीव अग्निकाय में उत्पन्न होने के लिये मोड़े वाली विग्रहगति से जा रहा है उसे भी अग्निकाय कहते हैं । इसका शुद्ध नाम अग्निकाय है ।

प्रश्न ८—अग्निकाय की कितनी जातियाँ हैं ?

उत्तर—अग्निकाय की अनेक जातियां हैं, जैसे—ज्वाला, अङ्गार, किरण, मुर्मुर, शुद्ध अग्नि (वज्र, बिजली आदि), बड़वानल, नन्दीश्वरधूमकुण्ड, मुकुटानल आदि ।

प्रश्न ९—अग्निकायिक जीव की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण अग्निकायिक जीवों की अवगाहना है ।

प्रश्न १०—वायुकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका वायु ही शरीर है उन्हें वायुकाय जीव कहते हैं । जो जीव वायुकाय में उत्पन्न होने के लिये मोड़े वाली विग्रहगति से जा रहा है उसे भी वायुकाय जीव कहते हैं । इसका शुद्ध नाम वायुकाय जीव है ।

प्रश्न ११—वायुकाय जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—वायुकाय जीव अनेक प्रकार के होते हैं—जैसे बात, उद्‌गम, उत्कलि, मण्डलि, महान, घन, गुञ्जा, वातवलय आदि ।

प्रश्न १२—वायुकायिक जीवों की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण वायुकायिक जीवों की अवगाहना है ।

प्रश्न १३—वनस्पतिकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका वनस्पति ही शरीर है उन्हें वनस्पतिकाय जीव कहते हैं । जो जीव वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने के लिये मोड़े वाली विग्रहगति से जा रहा है उसे भी वनस्पतिकाय कहते हैं । इस जीव का शुद्ध नाम वनस्पतिकाय जीव है ।

प्रश्न १४—वनस्पतिकाय जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—वनस्पतिकाय जीव दो प्रकार के होते है—(१) प्रत्येकवनस्पति, (२) साधारणवनस्पति ।

प्रश्न १५—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन वनस्पतिकाय जीवों का शरीर प्रत्येक है अर्थात् एक शरीर का स्वामी एक ही जीव है उन्हें प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव कहते हैं ।

प्रश्न १६—साधारणवनस्पतिकायिक जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन वनस्पतिकाय जीवों का शरीर साधारण है अर्थात् एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हैं उन्हें साधारणवनस्पतिकाय कहते हैं ।

प्रश्न १७—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—प्रत्येक वनस्पतिकाय के दो भेद हैं—(१) सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति, (२) अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति

।

प्रश्न १८—सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रत्येकवनस्पति साधारणवनस्पतिकाय जीवोंकरि प्रतिष्ठित हों याने सहित हो उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति कहते हैं ।

प्रश्न १९—सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायों की पहिचान क्या है ?

उत्तर—जिनकी शिरा, संधि, पर्व अप्रकट हों, जैसे—जरुवाककड़ी, जरुवातुरई, थोड़े दिन का गन्ना आदि ।

जिनका भङ्ग करने पर समान भङ्ग हो, जैसे—धनन्तर के पत्ते, पालक के पत्ते आदि । छेदन करने पर भी जो उग आवें, जैसे आलू आदि ।

जिस वनस्पति का कन्द, मूल क्षुद्र शाखा या स्कन्ध की छाल मोटी हो, जैसे—ग्वारपाठा, मूली, गाजर आदि ।

प्रश्न २०—सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य ?

उत्तर—सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति में अनन्त साधारणवनस्पति जीव रहते हैं, अत: सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति में अभक्ष्य है ।

प्रश्न २१—साधारणवनस्पति के कितने भेद हैं ?

उत्तर—साधारण वनस्पति के २ भेद हैं—(१) वादर साधारणवनस्पतिकाय (वादर निगोद), (२) सूक्ष्म साधारणवनस्पतिकाय (सूक्ष्म निगोद) । इन दोनों के भी २-२ भेद हैं । (१) नित्यनिगोद (२) इतरनिगोद ।

प्रश्न २२—नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों ने निगोद के अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नहीं पाई उन्हें नित्यनिगोद कहते हैं । ये जीव २ तरह के हैं—(१) अनादि अनन्त नित्यनिगोद, (२) अनादि सान्त नित्यनिगोद ।

प्रश्न २३—अनादि अनन्त नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन्होंने निगोद के अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय न आज तक पाई और न कभी पावेंगे उन्हें अनादि अनन्त नित्यनिगोद कहते हैं ?

प्रश्न—२४ अनादिसान्त नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—अनादिसान्त नित्यनिगोद उन्हें कहते हैं, जिन्होंने निगोद के अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नहीं पाई, किन्तु आगे अन्य पर्याय पा लेंगे याने निगोद से निकल जावेंगे उन्हें अनादि सान्त नित्यनिगोद कहते हैं ।

प्रश्न २५—इतरनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव निगोद से निकलकर अन्य स्थावरकायों में या त्रस जीवों में उत्पन्न हो गये थे, किन्तु पुन: निगोद में आ गये हैं उन्हें इतरनिगोद कहते हैं ।

प्रश्न २६—वादर और सूक्ष्म भेद क्या अन्य स्थावरकार्यों में भी होता है ?

उत्तर—प्रत्येकवनस्पति में तो वादर सूक्ष्म भेद नहीं होता, क्योंकि वे वादर ही होते हैं । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय व वनस्पतिकाय—इन चारों के वादर और सूक्ष्म भेद होते हैं ।

प्रश्न २७—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीवों की कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर—अंगुल के संख्यातवें भाग से १००० योजन तक की अवगाहना होती है । १००० योजन की अवगाहना स्वयंभूरमणसमुद्र में कमल की है ।

प्रश्न २८—साधारणवनस्पतिकाय जीवों की कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर—अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण साधारणवनस्पतिकाय अर्थात् निगोद जीवों की अवगाहना होती है ।

प्रश्न २९—स्थावर जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों के एक स्पर्शनइन्द्रिय ही होती है और अङ्गोपाङ्ग नहीं होते, उन्हें स्थावर जीव कहते हैं । उक्त सभी पाँचों काय के जीव स्थावर हैं ।

प्रश्न ३०—त्रस जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों के स्पर्शन रसना, ये दो, स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार अथवा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां हो उन्हें त्रस जीव कहते हैं । इसी कारण त्रस जीव चार प्रकार के है—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय, (३) चतुरिन्द्रिय, और (४) पञ्चेन्द्रिय ।

प्रश्न ३१—द्वीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण व रसनेन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से व अंगोपांग नामकर्म के उदय से जिनका दो इन्द्रिय वाले कार्यों में जन्म होता है उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं—जैसे शंख, लट, केंचुवा, जोक, सीप, कौड़ी आदि ।

प्रश्न ३२—द्वीन्द्रिय जीवों की देह की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर १२ योजन तक की अवगाहना होती है । १२ योजन की अवगाहना वाला शंख अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में होता है ।

प्रश्न ३३—त्रीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरण के क्षयोपशम से तथा वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से एवं अंगोपांग नामकर्म के उदय से तीन इन्द्रिय वाले काय में जिनका जन्म होता है वे त्रीन्द्रिय जीव कहलाते हैं । जैसे चींटी, खटमल, बिच्छू, जूं आदि ।

प्रश्न ३४—त्रीन्द्रिय जीवों की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—त्रीन्द्रिय जीवों की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग से ३ कोश प्रमाण तक होती है । तीन कोश की अवगाहना वाला बिच्छू अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप में पाया जाता है ।

प्रश्न ३५—चतुरिन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण और चक्षुरिन्द्रियावरण के क्षयोपशम से तथा वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से एवं अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से जिन जीवों का चार इन्द्रिय वाले काय से जन्म होता है उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं । जैसे—ततईया, मक्खी, मच्छर, भौंरा टिड्डी, तितली आदि ।

प्रश्न ३६—चतुरिन्द्रिय जीवों की कितनी अगाहना होती है ?

उत्तर—चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर १ योजन तक की होती है । १ योजन की अवगाहना वाला भ्रमर अन्तिम (स्वयंभूरमणनामक) द्वीप में पाया जाता है ।

प्रश्न ३७—पञ्चेन्द्रिय जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पंचेन्द्रिय जीव २ प्रकार के हैं—(१) असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय, (२) संज्ञी । असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तो केवल तिर्यग्गति में ही होते हैं, किन्तु संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव चारों गतियों में होते हैं । नरकगति, मनुष्यगति और देवगति में ये संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही होते हैं ।

प्रश्न ३८—असंज्ञी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनके मन न हो उन्हें असंज्ञी कहते हैं । मन आलम्बन से ही हित अहित का विचार और हेयोपादेय के त्याग और ग्रहण की प्रवृत्ति होती है । (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव भी मात्र असंज्ञी होते हैं) ।

प्रश्न ३९—संज्ञी जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनके मन हो जो शिक्षा, उपदेश ग्रहण कर सकें । (संज्ञी जीव ही सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है) ।

प्रश्न ४०—पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरण, चक्षुरिन्द्रियावरण और श्रोत्रेन्द्रियावरण के क्षयोपशम से एवं वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से तथा अङ्गोपाङ्गनामा नामकर्म के उदय से पाँच इन्द्रिय वाले काय में जिन जीवों का जन्म होता है उन्हें पञ्चेन्द्रिय जीव कहते हैं । इनमें जिन जीवों के नोइन्द्रियावरण का भी क्षयोपशम होता है उन्हें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कहते हैं और जिनके नोइन्द्रियावरण का क्षयोपशम नहीं होता है उन्हें असंज्ञीपंचेन्द्रिय कहते हैं ।

प्रश्न ४१—पंचेन्द्रिय जीवों की कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुल के असंख्यातवें भाग से १००० योजन तक । १००० योजन लम्बा और ५०० योजन चौड़ा व २५० योजन मोटा देह वाला महामत्स्य स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र में पाया जाता है ।

प्रश्न ४२—क्या सभी जीव त्रस और स्थावरों में ही पाये जाते हैं ?

उत्तर—मुक्त जीव न त्रस हैं और न स्थावर । वे त्रस और स्थावर की समस्त योनियों से मुक्त हो गये हैं ।

प्रश्न ४३—त्रस स्थावर जीवों में जन्म क्यों होता है ?

उत्तर—इन्द्रिय सुख में आसक्त होने से और इसी कारण त्रस स्थावर जीवों की हिंसा होने से इन जीवों में जन्म होता है ।

प्रश्न ४४—इन्द्रिय सुख की आसक्ति क्यों होती है ?

उत्तर—शुद्धचैतन्यमात्र निजपरमात्मत्व की भावना से उत्पन्न होने वाले परम अतीन्द्रिय सुख का जिन्हें स्वाद नहीं है उनके इन्द्रिय सुखों में आसक्ति होती है । अत: जिनके संसारजन्म से निवृत्त होने की वाञ्छा हो उन्हें अनादि अनन्त अहेतुक निज चैतन्यस्वरूप कारणपरमात्मा की भावना करनी चाहिये ।

अब त्रस, स्थावर जीवों का ही १४ जीवसमासों के द्वारा और विवरण करते हैं ।

गाथा १२

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
वादर सुहमे इन्दी सव्वे पज्जत्त इदरा य ।।१२।।

अन्वय—पंचेंदिय समणा अमणा णेया, परे सव्वे णिम्मणा, एइन्दी वादर सुहमे, सव्वे पज्जत्त य इदरा ।

अर्थ—पंचेन्द्रिय जीव समनस्क (संज्ञी) और अमनस्क (असंज्ञी) के भेद से दो प्रकार के हैं । बाकी और जीव याने द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव असंज्ञी हैं । एकेन्द्रिय जीव भी असंज्ञी हैं और वादरसूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के हैं । ये सब सातों प्रकार के जीव याने वादरएकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और संज्ञीपंचेन्द्रिय ये सब पर्याप्त हैं और अपर्याप्त हैं । इस प्रकार ये १४ जीवसमास हैं ।

प्रश्न १—पर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनके पर्याप्तिनामकर्म का उदय है उन्हें पर्याप्त कहते हैं ।

प्रश्न २—पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से जीव अपने-अपने योग्य ६,५ या ४ पर्याप्तियों को पूर्ण करे उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ३—अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनके अपर्याप्तिनामकर्म का उदय है उन्हें अपर्याप्त कहते हैं ।

प्रश्न ४—अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न कर सके और मरण हो जाये उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५—पर्याप्त, अपर्याप्त की इस व्याख्या से तो जिनके पर्याप्तिनामकर्म का उदय है वे पूर्वभव के मरण के बाद विग्रहगति में और जन्म के पहिले अन्तर्मुहूर्त में भी अपर्याप्त न न कहलावेंगे ?

उत्तर—जिनके पर्याप्तिनामकर्म का उदय है वे जीव विग्रहगति में व जन्म के पहिले अन्तर्मुहूर्त में निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते हैं ।

प्रश्न ६—निर्वृत्यपर्याप्ति किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों के अपने-अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण तो अवश्य होनी हैं और पूर्ण होने से पहिले उनका मरण भी नहीं होना, किन्तु जब तक उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक वे निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते हैं ।

प्रश्न ७—अपर्याप्त शब्द से यहाँ किन अपर्याप्तों का ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर—यहाँ जिनके अपर्याप्तिनामकर्म का उदय है वे अपर्याप्त, जिनका दूसरा नाम लब्धपर्याप्त है और निर्वृत्यपर्याप्त दोनों अपर्याप्तों का ग्रहण करना चाहिये ।

प्रश्न ८—पर्याप्ति कितनी होती है ?

उत्तर—पर्याप्ति ६ होती हैं—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति, (६) मनःपर्याप्ति ।

प्रश्न ९—आहारपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर के साधनभूत जिन नोकर्मवर्गणावों को जीव ग्रहण करता है उनको खल व रस भागरूप परिणमावने की शक्ति के पूर्ण हो जाने को आहारपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १०—शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—गृहीत नोकर्मवर्गणावों के स्कन्ध में से खल भाग का हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रसभाग को खून आदि द्रव अवयवरूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को शरीरपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न ११—इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—गृहीतनोकर्मवर्गणाओं के स्कन्ध में से कुछ वर्गणाओं को योग्य स्थान पर द्रव्येन्द्रियों के आकार परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १२—श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—उन नोकर्मवर्गणावों के कुछ स्कन्धों को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १३—भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—वचनरूप होने योग्य भाषावर्गणाओं को वचनरूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को भाषापर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १४—मन:पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यमनरूप होने योग्य मनोवर्गणावों को द्रव्य-मन के आकार रूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को मन:पर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १५—संज्ञी जीवों के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—संज्ञी जीवों के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

प्रश्न १६—असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मन:पर्याप्ति को छोड़कर शेष की पाँच पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न १७—चतुरिन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—चतुरिन्द्रिय जीव के आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास व भाषा पर्याप्ति ये ५ पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न १८—त्रीन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—त्रीन्द्रिय जीव के भी मनःपर्याप्ति को छोड़कर बाकी पांचों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

प्रश्न १९—द्वीन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—द्वीन्द्रिय जीव के भी मन:पर्याप्ति के बिना शेष पांचों पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न २०—एकेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—वादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के एकेन्द्रियजीवों के आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये ४ पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न २१—चौदह जीवसमासों के पूरे-पूरे नाम क्या हैं ?

उत्तर—चौदह जीव समासों के नाम इस प्रकार हैं—(१) वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, (२) वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (३) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, (४) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (५) द्वीन्द्रिय पर्याप्त, (६) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, (७) त्रीन्द्रिय पर्याप्त, (८) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, (९) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, (१०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, (११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, (१२) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, (१३) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, (१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

प्रश्न २२—इन १४ प्रकार के जीवसमासों में से कौनसा भेद उपादेय है ?

उत्तर—इनमें से एक भी प्रकार उपादेय नहीं है, क्योंकि ये सब विकृत पर्यायें हैं और इनका आकुलतावों से जन्म है, आकुलतावों की जनक हैं ।

प्रश्न २३—तब कौनसी अवस्था उपादेय है ?

उत्तर—अतीत जीवसमास की अवस्था उपादेय है, क्योंकि वहाँ आत्मा सम्पूर्ण गुण स्वाभाविक पर्यायपरिणत हो जाते हैं, अत: वह अवस्था सहज अनन्तआनन्दमय है ।

प्रश्न २४—अतीत जीवसमास होने का उपाय क्या है ?

उत्तर—जीवसमास से पृथक् अनादि अनंत निज चैतन्यस्वभाव की उपासना अतीत जीवसमास होने का बीज है ।

इस प्रकार संसारी जीवों का जीवसमास द्वारा विवरण करके अब इस गाथा में मार्गणा व गुणस्थानों का वर्णन करके नयविभाग से शुद्धता व अशुद्धता का विभाग बताते हैं—

गाथा १३

मग्गण गुणठाणेहिं चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ।।१३।।

अन्वय—तह संसारी असुद्धणया मग्गणगुणठाणेहिं चउदसहिं हवंति । हु सुद्धणया सव्वे सुद्धा विण्णेया ।

अर्थ—तथा संसारी जीव अशुद्धनय से १४ मार्गणा व १४ गुणस्थानों के द्वारा १४-१४ प्रकार के होते हैं, किन्तु शुद्धनय से सभी जीव शुद्ध जानना चाहिये ।

प्रश्न १—गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—मोह और योग के निमित्त से सम्यक्त्व और चारित्र गुणों की जो अवस्थायें होती हैं उन्हें गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न २—गुणस्थान कितने होते हैं ?

उत्तर—गुणस्थान तो असंख्याते होते हैं, क्योंकि आत्मगुणों के परिणमन असंख्याते प्रकार के हैं, किन्तु उन्हें प्रयोजनानुसार संक्षिप्त करके १४ प्रकार का कहा है । वे ये हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) सासादन सम्यक्त्व, (३) सम्यग्मिथ्यात्व, (४) अविरतसम्यक्त्व, (५) देशविरत, (६) प्रमत्तविरत, (७) अप्रमत्तविरत, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृतिकरण (१०) सूक्ष्मसाम्पराय, (११) उपशान्तकषाय, (१२) क्षीणकषाय, (१३) सयोगकेवली, (१४) अयोगकेवली ।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर-—मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत ७ तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान नहीं होने को मिथ्यात्व कहते हैं ।

प्रश्न ४—सासादनसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उतर—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक कषाय का उदय होने से प्रथमोपशम सम्यक्त्व से तो गिर जाना और मिथ्यात्व का उदय न आ पाने से मिथ्यात्व न होना इस अन्तरालवर्ती अयथार्थ भाव को सासादनसम्यक्त्व कहते हैं ।

प्रश्न ५—सम्यग्मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—जहाँ मिले हुए दही गुड़ के स्वाद की तरह मिश्र परिणाम हों जिन्हें न तो केवल सम्यक्त्वरूप कह सकते हैं और न मिथ्यास्वरूप ही कह सकते हैं, किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्व रूप हों उन परिणामों को सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं ।

प्रश्न ६—अविरतसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ सम्यक्त्व तो प्रकट हो गया, किन्तु एकदेश अथवा सर्वदेश किसी भी प्रकार का संयम प्रकट न हुआ हो उसे अविरतसम्यक्त्व कहते हैं ।

प्रश्न ७—देशविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां सम्यग्दर्शन भी प्रकट है और एकदेशसंयम याने संयमासंयम भी हो गया है उस परिणाम को देशविरत गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न ८—प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहा सर्वदेशसंयम भी प्रकट हो गया, किन्तु संज्वलनकषाय का उदय मंद न होने से प्रमाद हो उसे भावप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न ९—प्रमाद का तात्पर्य क्या आलस्य है या अन्य ?

उत्तर—उपदेश, विहार, आहार, दीक्षा, शिक्षा आदि शुभोपयोग का राग उठना आदि प्रमाद का तात्पर्य है ।

प्रश्न १०—अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां संज्वलनकषाय का उदय मंद हो जाने से प्रमाद नहीं रहा उस परिणाम को अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न ११—अप्रमत्तविरत के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अप्रमत्तविरत के २ भेद है—(१) स्वस्थान अप्रमत्तविरत, (२) सातिशय अप्रमत्तविरत ।

प्रश्न १२—स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणाम के बाद ऊचे स्थान का परिणाम नहीं होता, किन्तु छठे गुणस्थान का भाव होता है उसे स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहते हैं । इसका नाम स्वस्थान इसलिये हैं कि अपने स्थान तक रहता है, आगे नहीं बढ़ता । छठे व सातवें गुणस्थान का काल छोटा अन्तर्मुहूर्तमात्र है । मुनियों के परिणाम जब तक श्रेणी नहीं चढ़ते याने आगे नहीं बढ़ते छठे से सातवें, सातवें से छठे में, इस प्रकार असंख्यात बार आते-जाते रहते हैं ।

प्रश्न १३—सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणाम के बाद आठवें गुणस्थान में पहुंचते हैं उस अप्रमत्तविरत को सातिशय अप्रमत्तविरत कहते हैं ।

प्रश्न १४—सातिशय अप्रमत्तविरत ऊपर के गुणस्थान में क्यों पहुंच जाता है ?

उत्तर—सातिशय अप्रमत्तविरत में इस जाति का अध:करण परिणाम होता है, जिस निर्मल परिणाम के कारण वह ऊपर के परिणाम में पहुंचा देता है ।

प्रश्न १५—अधःकरण परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां ऐसा परिणाम हो कि अधःकरण के काल में विवक्षित कालवर्ती मुनियों के परिणाम के सदृश अधस्तनकालवर्ती मुनियों के परिणाम भी मिल जाये उसे अधःकरण परिणाम कहते हैं ।

अनन्तानुबंधी का विसंयोजन, दर्शनमोहनीय का उपशम, दर्शनमोहनीय का क्षय, चारित्रमोहनीय का

उपशम, चारित्र मोहनीय का क्षय आदि उच्च स्थानों की प्राप्ति के लिये एक प्रकार के निर्मल परिणाम ३ तरह के पाये जाते है—(१) अधःकरण, (२) अपूर्वकरण और (३) अनिवृत्तिकरण ।

यहां चारित्रमोहनीय को उपशम या क्षय के लिये उद्यम प्रारम्भ होता है, उसके लिये होने वाले निर्मल परिणामों में से यह पहला भाग है ।

प्रश्न १६—सातिशय अप्रमत्तविरत के अनन्तर किस गुणस्थान में पहुंचना होता है ?

उत्तर—यदि चारित्रमोहनीय के उपशम के लिये अधःकरण परिणाम हुआ है तो उपशमक अपूर्वकरण में पहुंचता है और यदि चारित्रमोहनीय के क्षय के लिये अध:करण परिणाम हुआ है तो क्षपक अपूर्वकरण में पहुंचता है ।

प्रश्न १७—अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां चारित्रमोहनीय के उपशम या क्षय के लिये उत्तरोत्तर अपूर्व परिणाम हों उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं । इसका अपूर्वकरण इसलिये नाम है कि इसके काल में समानसमयवर्ती मुनियों के परिणाम सदृश भी हो जायें, किन्तु उस विवक्षित समय से भिन्न (पूर्व या उत्तर) समयवर्ती मुनियों के परिणाम विसदृश ही होंगे ।

प्रश्न १८—यह गुणस्थान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—अपूर्वकरण गुणस्थान दो प्रकार का है—(१) उपशमक अपूर्वकरण और (२) क्षपक अपूर्वकरण ।

इस गुणस्थान से दो श्रेणियां हो जाती हैं—(१) उपशमश्रेणी और (२) क्षपकश्रेणी । जिस मुनि ने चारित्रमोहनीय के उपशम के लिये अधःकरण परिणाम किया था वह उपशमश्रेणी ही चढ़ता है सो वह उपशमक-अपूर्वकरण होता है और जिस मुनि ने चारित्रमोहनीय के क्षय के लिये अध:करण परिणाम किया था वह क्षपकश्रेणी ही चढ़ता है, सो वह क्षपक-अपूर्वकरण होता है ।

प्रश्न १९—उपशमश्रेणी में कौन-कौन गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर—उपशमश्रेणी में ८वां, ९वां, १०वां, ११वां ये चार गुणस्थान होते हैं इसके बाद तो चारित्रमोहनीय के उपशम का काल समाप्त होने के कारण नियम से नीचे गुणस्थान में आना पड़ता है ।

प्रश्न २०—क्षपकश्रेणी में कौन-कौन गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर—क्षपकश्रेणी में ८वां, ९वां, १०वां, १२वां, १३वां, १४वां ये ६ गुणस्थान होते हैं । इसके अनन्तर नियम से मोक्ष प्राप्त होता है । क्षपकश्रेणी वाला नीचे कभी नहीं गिरता ।

प्रश्न २१—इस अपूर्वकरण गुणस्थान में क्या विशेष कार्य होने लगते हैं ?

उत्तर—इस गुणस्थान में—(१) प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होने लगती है, (२) कर्मों की स्थिति का घात होने लगता है, (३) नवीन स्थितिबन्ध कम हो जाते हैं, (४) कर्मों का बहुतसा अनुभाग नष्ट हो जाता है, (५) कर्मवर्गणावों की असंख्यातगुणी निर्जरा होने लगती है, (६) अनेक अशुभप्रकृतियां शुभ में बदल जाती हैं ।

प्रश्न २२—अनिवृत्तिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां विवक्षित एक समयवर्ती मुनियों के समान ही परिणाम हों और पूर्वोत्तरसमयवर्ती मुनियों के परिणाम विसदृश ही हो उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं । इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में चारित्रमोहनीय की २० प्रकृतियों का ८ बार में उपशम या क्षय हो जाता है । उपशमक अनिवृत्तिकरण के तो उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरण के क्षय होता है ।

प्रश्न २३—चारित्रमोहनीय के उपशम या क्षय का क्रम क्या है ?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ९ भाग हैं, जिसमें—

(१) पहिले भाग में तो चारित्रमोहनीय की किसी प्रकृति का उपशम या क्षय नहीं होता, वहाँ नामकर्मादि की १६ प्रकृतियों का उपशम या क्षय होता है ।

(२) दूसरे भाग में अप्रत्याख्यानावरण ४ व प्रत्याख्यानावरण ४, इन ८ प्रकृतियों का उपशम या क्षय होता है ।

(३) तीसरे भाग में नपुंसकवेद का उपशम या क्षय होता है ।

(४) चौथे भाग में स्त्रीवेद का उपशम या क्षय होता है ।

(५) पाँचवे, भाग में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा—इन ६ नोकषायों का उपशम या क्षय होता है ।

(६) छठे भाग में पुरुषवेद का उपशम या क्षय हो जाता है ।

(७) सातवें भाग में संज्वलन क्रोध का उपशम या क्षय हो जाता है ।

(८) आठवें भाग में संज्वलन मान का उपशम या क्षय हो जाता है ।

(९) नवें भाग में संज्वलन माया का उपशम या क्षय हो जाता है ।

इस प्रकार आठ बार में २० चारित्रमोहनीय प्रकृतियों का उपशमक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में क्षय हो जाता है ।

प्रश्न २४—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभ के उदय के कारण सूक्ष्म लोभ रह जाता है, उसके भी दूर करने के लिये सूक्ष्मसाम्पराय संयम होता है, उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं । इस गुणस्थान के अन्त में संज्वलन सूक्ष्मलोभ का उपशमक सूक्ष्मसाम्पराय के उपशम हो जाता है किन्तु क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के क्षय हो जाता है ।

प्रश्न २५—उपशान्तकषाय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशान्त हो जानें से यथाख्यातचारित्र हो जाता है उस अकषाय निर्मलपरिणमन को उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न २६—उपशान्तकषाय गुणस्थान में दर्शनमोहनीय की ३ व चारित्रमोहनीय की ४ अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन ४ प्रकृतियों की क्या परिस्थिति होती है ?

उत्तर—द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उपशमश्रेणी में चढ़ता है सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व सातवें गुणस्थान में हो जाता है । यहाँ इन सात प्रकृतियों का उपशम कर दिया था, वही उपशम यहाँ पर है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि ने चौथे से ७वें तक किसी गुणस्थान में इन सात प्रकृतियों का क्षय कर दिया था, सो सात प्रकृतियों का यहाँ सर्वथा अभाव है ।

प्रश्न २७—उपशान्तकषाय गुणस्थान से किस प्रकार नीचे के गुणस्थानों में आता है ?

उत्तर—द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय तो क्रमश: १०वें, ९वें, ८वें, ७वें व ६वें में तो आता ही है, यदि और गिरे तो पहिले गुणस्थान तक भी जा सकता है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांतकषाय क्रमश:, १०वें, ९वें, ८वें, ७वें, ६वें में तो आता ही है यदि गिरे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है, क्योंकि इसके क्षायिक सम्यक्त्व है । क्षायिक सम्यक्त्व कभी नष्ट नहीं होता ।

उपशान्त कषाय गुणस्थान वाले का यदि मरण हो तो मरण समय में ही एकदम चौथा गुणस्थान हो जाता है ।

प्रश्न २८—उपशमश्रेणी के अन्य गुणस्थानों में मरण होता है अथवा नहीं ?

उत्तर—उपशमश्रेणी के अन्य गुणस्थानों में भी अर्थात् १०वें, ९वें, ८वें गुणस्थान में भी मरण हो सकता है । यदि मरण हो तो उस गुणस्थान के अनन्तर ही मरण समय में ही चौथा गुणस्थान हो जाता है ।

प्रश्न २९—उपशान्तकषाय गुणस्थान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—उपशान्तकषाय गुणस्थान एक ही प्रकार का है । इसमें उपशमक ही होते हैं ।

प्रश्न ३०—क्षीणकषाय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारित्रमोहनीय की सर्व प्रकृतियों के क्षय हो जाने से जहाँ यथाख्यात चारित्र हो जाता है, उस अकषाय निर्मल परिणाम को क्षीणकषाय गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न ३१—क्षीणकषाय गुणस्थान में दर्शनमोह की तीन व अनन्तानुबंधी की चार—इन सात प्रकृतियों की क्या परिस्थिति है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है और क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थान में उत्पन्न हो जाता है वहीं इन सात प्रकृतियों का क्षय हो गया था । सो यहाँ भी ७ प्रकृतियों का अत्यन्त अभाव है ।

प्रश्न ३२—क्षीणकषाय गुणस्थान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—क्षीणकषाय गुणस्थान एक प्रकार का है । इसमें क्षपक ही होते हैं और सयोगकेवली, अयोगकेवली भी केवल क्षपक ही होते हैं । इस गुणस्थान के अन्त समय में ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ६ (४

दर्शनावरण की, निद्रा व प्रचला), अंतराय की ५—इस प्रकार १६ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है ।

प्रश्न ३३—इस गुणस्थान में स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला—इन तीन दर्शनावरणों की क्या परिस्थिति रहती है ?

उत्तर—इन तीन प्रकृतियों का तो क्षपक ने अनिवृत्तिकरण के पहिले भाग में ही क्षय कर दिया था, सो वही से इनका अत्यन्त अभाव है ।

प्रश्न ३४—सयोगकेवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—चारों घातियाकर्मों के क्षय हो जाने से जहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य प्रकट हो जाते हैं उन्हें केवली कहते हैं और इनके जब तक शरीर और योग रहता है इन्हें सयोगकेवली कहते हैं । इनका दूसरा नाम अरहंतपरमेष्ठी भी है ।

प्रश्न ३५—अयोगकेवली किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरहंतपरमेष्ठी के जब योग नष्ट हो जाता है तब से जब तक ये शरीर से मुक्त नहीं होते इन्हें अयोगकेवली कहते हैं । अयोगकेवली का काल "अ इ उ ऋ ऌ" इन पांच ह्रस्व अक्षरों के बोलने में जितना लगता है उतना ही है । इनके उपान्त्य समय में ७२ और अन्त में १३ व यदि तीर्थङ्कर नहीं हैं तो १२ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है ।

प्रश्न ३६-—चौदहवें गुणस्थान के बाद क्या स्थिति होती है ?

उत्तर—अयोगकेवली के अनन्तर ही शरीर से भी मुक्त होकर दूसरे समय में लोक के अग्रभाग में जा विराजमान होते हैं । इन्हें सिद्धभगवान कहते हैं ।

प्रश्न ३७—यथाख्यात चारित्र और केवलज्ञान होने के बाद तुरन्त मोक्ष क्यों नहीं होता ?

उत्तर—यद्यपि १३वें गुणस्थान के पहिले समय में रत्नत्रय की पूर्णता हो गई तथापि योगव्यापार १३वें गुणस्थान में चारित्र में कुछ मल उत्पन्न करता है अर्थात् परमयथाख्यात चारित्र नहीं होने देता है । जैसे—किसी पुरुष ने चोरी का परित्याग कर दिया है तथापि यदि चोर का संसर्ग हो तो वहाँ दोष उत्पन्न करता है ।

प्रश्न ३८—सयोगकेवली के अन्त में तो योग का भी अभाव हो जाता है, फिर १३वें गुणस्थान के बाद ही निर्वाण क्यों नहीं हो जाता है ?

उत्तर—तेरहवें गुणस्थान के बाद योग का अभाव होने पर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक अघातियाकर्मों का उदय चारित्रमल उत्पन्न करता है, अत: अघातिया कर्मों का उदयसत्त्व समाप्त होते ही शीघ्र मोक्ष होता है ।

प्रश्न ३९—गुणस्थानों में उत्तरोत्तर बढ़ने का व गुणस्थानातीत होने का क्या उपाय है ?

उत्तर—सभी आत्मोन्नतियों का व पूर्ण उन्नति का उपाय एक ही है, उस उपाय के आलम्बन की हीनाधिकता हो, यह अन्य बात है । वह उपाय है अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभाव का आलंबन । इस ही

चैतन्यस्वभाव का अपरनाम है कारणपरमात्मा या कारणब्रह्म । हमारी भी उन्नति इस निज चैतन्य कारणपरमात्मा की भावना और अवलम्बन से होगी ।

प्रश्न ४०—क्या यह स्वभाव सिद्ध अवस्था में भी है ?

उत्तर—यह चैतन्यस्वभाव या कारणपरमात्मा अथवा कारण सिद्ध अवस्था अर्थात् कार्यब्रह्म ब्रह्म की स्थिति में भी है, किन्तु वहाँ कार्यब्रह्म होने से कारणब्रह्म की अप्रधानता है । स्वभाव तो अनादि अनन्त होता है । इस ही स्वभाव को कारण रूप से उपादान करके केवलज्ञानोपयोगरूप परिणमते रहना होता रहता है ।

प्रश्न ४१—मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन सदृश धर्मों द्वारा जीवों को खोजा जा सकता हो उन धर्मों के द्वारा जीवों के खोजने को मार्गणा कहते हैं ।

प्रश्न ४२—मार्गणा के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—मार्गणा के १४ प्रकार है—(१) गतिमार्गणा, (२) इन्द्रियजातिमार्गणा, (३) कायमार्गणा (४) योगमार्गणा, (५) वेदमार्गणा, (६) कषायमार्गणा, (७) ज्ञानमार्गणा, (८) संयममार्गणा, (९) दर्शनमार्गणा, (१०) लेश्यामार्गणा, (११) भव्यत्वमार्गणा, (१२) सम्यक्त्वमार्गणा, (१३) संज्ञित्वमार्गणा और (१४) आहारकमार्गणा ।

प्रश्न ४३—गतिमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—गति की अपेक्षा से जीवों का विज्ञान करना गतिमार्गणा है । इस मार्गणा से जीव ५ प्रकार से उपलब्ध होते हैं—१-नारकी, २-तिर्यंच, ३-मनुष्य, ४-देव, ५-गतिरहित ।

प्रश्न ४४—इन्द्रिय जाति मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय जाति की अपेक्षा से जीवों को खोजना इन्द्रिय जाति मार्गणा या इन्द्रियमार्गणा हैं । इस मार्गणा से जीव ६ प्रकार से उपलब्ध होते हैं—(१) एकेन्द्रिय, (२) द्वीन्द्रिय, (३) त्रीन्द्रिय, (४) चतुरिन्द्रिय, (५) पञ्चेन्द्रिय और (६) इन्द्रियरहित ।

प्रश्न ४५—कायमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—काय (शरीर) की प्रधानता से जीवों का परिचय पाना कायमार्गणा है । कायमार्गणा से जीव ७ तरह से ज्ञात होते है—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) अग्निकायिक, (४) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक, (६) त्रसकायिक और (७) कायरहित ।

प्रश्न ४६—जो जीव विग्रह गति में गमन कर रहे हैं उनके केवल तैजस और कार्माण ही शरीर है, वे क्या कायरहित में अन्तर्गत हैं ?

उत्तर—जो जीव जिस काय में उत्पन्न होने के लिये विग्रहगति से गमन कर रहा है उसके उस काय सम्बंधी नामकर्म प्रकृतियों का उदय होने से तथा १, २ या ३ समय में ही उस काय को अवश्य प्राप्त करने से उस ही कायवान् में गर्भित है वे कायरहित में अन्तर्गत नहीं होते ।

प्रश्न ४७—योगमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—काय वचन व मन प्रयत्न के निमित्त से आत्मप्रदेशों के परिस्पन्द होने को योग कहते हैं । योग की अपेक्षा जीवों का परिचय करना योगमार्गणा है । योगमार्गणा की अपेक्षा जीव १६ प्रकार से उपलब्ध होते हैं—(१) औदारिक काययोगी, (२) औदारिक मिश्रकाययोगी, (३) वैक्रियक काययोगी (४) वैक्रियक मिश्रकाययोगी, (५) आहारक काययोगी, (६) आहारकमिश्रकाय योगी, (७) कार्माणकाययोगी, (८) सत्यवचनयोगी, (९) असत्यवचनयोगी, (१०) उभयवचनयोगी, (११) अनुभयवचनयोगी, (१२) सत्यमनोयोगी, (१३) असत्यमनोयोगी, (१४) उभयमनोयोगी, (१५) अनुभयमनोयोगी और (१६) योगरहित ।

प्रश्न ४८—वेदमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—मैथुन के संस्कार व अभिलाषा को वेद कहते हैं । वेद की अपेक्षा जीवों को खोजना वेदमार्गणा है । वेदमार्गणा से जीव चार प्रकार के पाये जाते हैं—(१) पुंवेदी, (२) स्त्रीवेदी, (३) नपुंसकवेदी, (४) अपगतवेदी ।

प्रश्न ४९—कषायमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—कषाय की अपेक्षा जीवों की खोज करना कषायमार्गणा है । कषायमार्गणा से जीव २६ प्रकार से उपलब्ध होते हैं—(१) अनन्तानुबन्धी क्रोधी, (२) अन० मानी, (३) अन० मायावी, (४) अन० लोभी, (५) अप्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (६) अप्र० मानी, (७) अप्र० मायावी, (८) अप्र० लोभी, (९) प्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (१०) प्रत्याख्यानावरण मानी, (११) प्रत्याख्यानावरण मायावी, (१२) प्रत्याख्यानावरण लोभी, (१३) संज्वलन क्रोधी, (१४) सं० मानी, (१५) सं० मायावी, (१६) सं० लोभी, (१७) हस्यवान्, (१८) रतिमान्, (१९) अरतिमान्, (२०) शोकवान्, (२१) भयवान्, (२२) जुगुप्सावान्, (२३) पुंवेदी, (२४) स्त्रीवेदी, (२५) नपुंसकवेदी, (२६) कषायरहित ।

प्रश्न ५०—ज्ञानमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान की अपेक्षा जीवों का परिचय पाना ज्ञानमार्गणा है । ज्ञानमार्गणा से जीव ८ प्रकार से उपलब्ध होते हैं—(१) कुमतिज्ञानी, (२) कुश्रुतज्ञानी, (३) कुअवधिज्ञानी, (४) मतिज्ञानी, (५) श्रुतज्ञानी, (६) अवधिज्ञानी, (७) मनःपर्ययज्ञानी, (८) केवलज्ञानी ।

प्रश्न ५१—संयममार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर—संयम की अपेक्षा से जीवों का ज्ञान करना संयममार्गणा है । इस मार्गणा से जीव ८ प्रकार से ज्ञात होते है—(१) असंयम, (२) संयमासंयम, (३) सामायिकसंयम, (४) छेदोपस्थनासंयम, (५) परिहारविशुद्धिसंयम, (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयम, (७) यथाख्यातसंयम, (८) असंयम-संयमा-संयम—संयम इन तीनों से रहित ।

प्रश्न ५२—दर्शनमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—दर्शन की अपेक्षा से जीवों का परिचय पाना दर्शनमार्गणा है । दर्शनमार्गणा से जीव ४ प्रकार के उपलब्ध होते हैं—(१) चक्षुर्दर्शनी, (२) अचक्षुर्दर्शनी, (दे) अवधिदर्शनी, (४) केवलदर्शनी ।

प्रश्न ५३—लेश्यामार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—कषायों से अनुरञ्जित योगप्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं । लेश्या की अपेक्षा से जीवों को खोजना लेश्यामार्गणा है । लेश्यामार्गणा की अपेक्षा से जीव ७ प्रकार के उपलब्ध होते हैं—(१) कृष्णलेश्यावान्, (२) नीललेश्यावान्, (३) कापोतलेश्यावान्, (४) पीतलेश्यावान्, (५) पद्मलेश्यावान्, (६) शुक्ललेश्यावान् और (७) लेश्यारहित ।

प्रश्न ५४—भव्यत्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो रत्नत्रय के पाने के योग्य होवें वे भव्य हैं और भव्यत्व की दृष्टि से जीवों को खोजना भव्यत्वमार्गणा है । इस मार्गणा से जीव ३ प्रकार के पाये जाते हैं—(१) भव्य, (२) अभव्य और (३) अनुभय (सिद्ध) ।

प्रश्न ५५—सम्यक्त्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्व की दृष्टि से जीवों का परिचय पाना सम्यक्त्वमार्गणा है । इस मार्गणा से जीव ६ तरह के उपलब्ध होते हैं—(१) मिथ्यादृष्टि, (२) सासादनसम्यक्त्ववान्, (३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि, (४) उपशमसम्यग्दृष्टि, (५) वेदकसम्यग्दृष्टि और (६) क्षायिकसम्यग्दृष्टि ।

प्रश्न ५६—संज्ञित्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—संज्ञापने की अपेक्षा से जीवों को खोजना संज्ञित्वमार्गणा है । इस मार्गणा से जीव ३ तरह के पाये जाते हैं—(१) संज्ञी, (२) असंज्ञी और (३) अनुभय (न संज्ञी, न असंज्ञी) ।

प्रश्न ५७—आहारकमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव नोकर्मवर्गणावों को ग्रहण करता है वह आहारक है व आहारकपने की दृष्टि से जीवों का परिचय पाना आहारकमार्गणा है । इस मार्गणा से जीव दो तरह के पाये जाते हैं—(१) आहारक और (२) अनाहारक ।

प्रश्न ५८—इन सब भेदों का संक्षिप्त विवरण क्या है ?

उत्तर—विस्तारभय से यहाँ विवरण नहीं करते । एतदर्थ गुणस्थानदर्पण व जीवस्थान चर्चा देखिये ।

गुणस्थानदर्पण में सर्वगुणस्थान व अतीतगुणस्थान का अनेक प्रकार से विवरण है ।

जीवस्थान चर्चा में—मार्गणावों का विशेष विवरण है तथा किस गुणस्थान में व किस मार्गणा के भेद में गुणस्थान मार्गणायें बंध, उदय, सत्त्व, भाव, आस्रव आदि कितने-कितने होते हैं, यह विवरण सामान्य से, पर्याप्तनानायें, पर्याप्त एक जीव में, पर्याप्त एक जीव के एक समय में, अपर्याप्तनानायें, अपर्याप्त एक जीव में, अपर्याप्त एक जीव के एक समय में इतने-इतने प्रकार से किया गया है ।

प्रश्न ५९—इन मार्गणा स्थानों में कौनसा स्थान निर्मल एवं उपादेय है ?

उत्तर—इन मार्गणावों में अन्तिम भेद वाला स्थान कर्मों के क्षय से प्रकट होने के कारण निर्मल और उपादेय है ।

प्रश्न ६०—अनाहारक तो छहों काय के जीवों में हो जाता है, वह कैसे उपादेय हैं ?

उत्तर—इस उपादेय अनाहारकत्व में संसारी अनाहारकों का ग्रहण नहीं करना, किन्तु सिद्ध भगवान का ग्रहण करना । सिद्धप्रभु के नोकर्मवर्गणावों का कभी भी ग्रहण नहीं होता ।

प्रश्न ६१—अन्य सर्व मार्गणास्थान क्यों हेय हैं ?

उत्तर—संसारी जीवों के उक्त सब प्रकार कर्मों का उदय, उपशम, क्षयोपशम उदीरणादि का निमित्त पाकर होते हैं, वे स्वाभाविक भाव नहीं हैं ।

प्रश्न ६२—क्षायिक भाव भी तो कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है, वह कैसे स्वाभाविक भाव है ?

उत्तर—कर्मों के क्षय को निमित्त पाकर होने वाला भाव यद्यपि इस निमित्तदृष्टि से क्षयकाल में नैमित्तिक भाव है तथापि आगे सब समयों में अनैमित्तिक भाव है, अत: स्वाभाविक भाव है तथा क्षयकाल में भी कर्मों का अभाव होनारूप ही तो निमित्त कहा है, सो कर्मों के अभाव से होने के कारण स्वाभाविक भाव है ।

प्रश्न ६३—मार्गणास्थानों में अन्तिम भेद द्वारा बताया गया निर्मल परिणमन कैसे प्रकट होता है ?

उत्तर—उन-उन समस्त मार्गणास्थानों से विलक्षण शुद्ध चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से वह निर्मलपरिणमन उत्पन्न होता है । जैसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, गतिरहित (सिद्ध), पांचों पर्यायों से विलक्षण चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से गतिरहित परिणमन प्रकट होता है । एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और इन्द्रियरहित—इन छहों पर्यायो से विलक्षण सनातन चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से इन्द्रियरहित परिणमन प्रकट होता है । इत्यादि प्रकार से सब मार्गणावों लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न ६४—क्या उन निर्मल पर्यायों के भिन्न-भिन्न साधन हैं ?

उत्तर—नहीं, एक सनातन चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन में ही गतिमार्गणा भेदरहित, इन्द्रियमार्गणा भेदरहित, कायमार्गणा भेदरहित आदि द्वारा विशेषित वह सर्वचैतन्यस्वभाव अन्तर्निहित है । वह एक ही है और है अनादि, अनन्त, अहेतुक, परमपारिणामिक भावमय, कारणपरमात्मा, समयसार, शुद्धात्मतत्त्व आदि संकेतों द्वारा गम्य ।

प्रश्न ६५—शुद्धनय से ये सभी जीव शुद्ध किस प्रकार से हैं ?

उत्तर—शुद्धनय वस्तु के अखंडस्वभाव को देखता है । कालगत, क्षेत्रगत, शक्तिगत भेदों को यह नय विषय नहीं करता । इस शुद्धनय का अपर नाम परमशुद्धनिश्चयनय है । शुद्धनय की दृष्टि में मात्र चैतन्यत्यभाव है । इस दृष्टि से सभी जीव स्वभाव से शुद्ध हैं ।

प्रश्न ६६—यह शुद्ध पारिणामिक भाव तो शाश्वत है ही, उसका करना ही क्या रह जाता ?

उत्तर—इस शाश्वत शुद्ध पारिणामिक भाव का ध्यान करना कर्त्तव्य हो जाता है । यह शुद्ध स्वभाव तो शाश्वत है, श्रेयरूप है ।

इस प्रकार संसारस्थ अधिकार का विवरण करके सिद्ध और विस्रसोद्‌र्ध्वगति—इन दो अधिकारों का एक गाथा में विवरण करते हैं—

गाथा १४

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयगठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ।।१४।।

अन्वय—सिद्धा णिक्कम्मा, अट्ठगुणा चरमदेहो किंचूणा, लोयगठिदा, णिच्चा, उत्पादवयेहिं संजुत्ता

अर्थ—सिद्धभगवान अष्टकर्मों से रहित हैं, अष्टगुणों से सहित है, अन्तिम शरीर से कुछ कम हैं तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं और उत्पादव्ययकरि संयुक्त हैं ।

प्रश्न १—सिद्ध शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—सिद्ध्ययति इति सिद्धः । जो पूर्णविकास को प्राप्त हो गया उसे सिद्ध कहते हैं ।

प्रश्न २—जीव का विकास क्यों रुका हुआ है ?

उत्तर—अपने विभाव परिणामों के कारण जीव का विकास रुका हुआ है ।

प्रश्न ३—जीव के विभावपरिणाम क्यों हो जाते हैं ?

उत्तर—कर्म के उदय का निमित्त पाकर जीव के मलिन संस्कार के कारण जीव के विभावपरिणाम हो जाते हैं । ये विभावपरिणाम, दुःखरूप है ।

प्रश्न ४—कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—कर्म तो असंख्यातों प्रकार के हैं, किन्तु उनके फल देने की प्रकृति की जाति बनाकर भेद करने से कर्म ८ प्रकार के हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय ।

प्रश्न ५—ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनमें ज्ञान को प्रकट न होने देने के निमित्त होने को प्रकृति हो उन कर्मवर्गणाओं को ज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६—दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कार्माणवर्गणावों में अन्तर्मुख चैतन्य प्रकाश को प्रकट न होने देने के निमित्त होने की प्रकृति हो उन्हें दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७—वेदनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावों में जीव के सुख दुःख होने के निमित्त होने को प्रकृति हो उन्हें वेदनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८—मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावों में जीव के सम्यक्त्व और चारित्र फुट के विकृत होने में निमित्त होने की प्रकृति हो उन्हें मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९—आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणाओं में जीव को नये भव में ले जाने में व शरीर में रहने में निमित्त होने की प्रकृति हो उन्हें आयुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०—नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावों में शरीर की रचना होने के निमित्त होने की प्रकृति हो उन्हें नामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११—गोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव उच्च नीच कुल में उत्पन्न हो व रहे उसे गोत्रकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२—अन्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विश्व आवे उसे अंतरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३—कर्म किस उपाय से नष्ट होते हैं ?

उत्तर—निज शुद्धात्मा के अनुभव के बल से कर्म स्वयं अकर्म हो जाते हैं । कर्म का अकर्मस्वरूप होना ही कर्म को नाश है ।

प्रश्न १४—कर्म के नाश का क्या क्रम है ?

उत्तर—पहिले मोहनीयकर्म का क्षय होता है, पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय—इन तीन का एक साथ क्षय होता है । पश्चात् शेष के ४ कर्मों का एक साथ क्षय होता है । आठों कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाता है । सिद्धभगवान आठों कर्मों से रहित हैं ।

प्रश्न १५—सिद्धभगवान के गुण कितने हैं ?

उत्तर—विशेष भेदनय से सिद्धभगवान में गीतरहितता, इन्द्रियरहितता, गुणस्थानातीतता, अनन्त ज्ञान, अनन्तआनन्द आदि अनन्त गुण हैं ।

प्रश्न १६—अभेदनय से सिद्धभगवान में कितने गुण हैं ?

उत्तर—साक्षात् अभेदनय से अचैतन्य एक गुण है । विवक्षित अभेदनय से सिद्धप्रभु में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन ये दो गुण हैं अथवा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य ये चार गुण हैं ।

प्रश्न १७—मध्यमपद्धति से सिद्धभगवान में कितने गुण हैं ?

उत्तर—सिद्धभगवान में ८ गुण हैं—(१) परमसम्यक्त्व, (२) केवलज्ञान, (३) केवलदर्शन, (४) अनन्तवीर्य, (५) अनन्तसुख, (६) अवगाहनत्व, (७) सूक्ष्मत्व और (८) अगुरुलघुत्व ।

प्रश्न १८—परमसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायों के विषय में विपरीत अभिप्रायरहित सम्यक्त्वरूप परिणमन को परमसम्यक्त्व कहा है । इस सम्यक्त्व में चारित्रमोहजनित दोष का भी सम्बंध न होने से तथा उपशम, क्षय, क्षयोपशमादि निमित्त न रहने से एवं केवलज्ञान का साथ होने से परमसम्यक्त्व नाम कहा है । इसे परभावगाढ़ सम्यक्त्व भी कहते हैं ।

प्रश्न १९—परमसम्यक्त्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—शुद्धात्म रुचिस्वरूप निश्चयसम्यक्त्व की पहिले भावना व परिणति हुई, जिसके फल में यह परमसम्यक्त्व प्रकट हुआ ।

प्रश्न २०—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थों को समस्त पर्यायों सहित एक साथ जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न २१—केवलज्ञान कैसे प्रकट हुआ है ?

उत्तर—अविकार अखण्ड स्व के संवेदन की स्थिरता के फलस्वरूप यह केवलज्ञान प्रकट हुआ ।

प्रश्न २२—केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थों में व्यापक सामान्य आत्मा के प्रतिभास करने वाले चैतन्य प्रकाश को केवलदर्शन कहते हैं ।

प्रश्न २३—केवलदर्शन कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निर्विकल्प निज शुद्धात्मतत्त्व के अवलोकन के फलस्वरूप यह केवलदर्शन प्रकट हुआ ।

प्रश्न २४—अनन्तवीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनन्त पदार्थों के ज्ञान आदि समस्त गुणविकास का अनन्त सामर्थ्य प्रकट होने को अनन्तवीर्य कहते हैं ।

प्रश्न २५-अनन्तवीर्य कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अखण्डशक्तिमय निज कारणसमयसार के ध्यान में निज सामर्थ्य का उपयोग किया और स्वरूप से विचलित करने का कोई अन्तरङ्ग या बहिरङ्ग कारण उपस्थित हुआ तो उस समय परमधैर्य का अवलम्बन लिया व स्वरूप से चलित नहीं हुए । इसके फलस्वरूप यह अनन्तवीर्य प्रकट हुआ ।

प्रश्न २६—अनन्तसुख किसे कहते हैं ?

उत्तर—आकुलता के अत्यन्त अभाव होने को अनन्तसुख कहते हैं । इसका अपर नाम अव्याबाध भी है ।

प्रश्न २७—अनन्तसुख कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निज सहजशुद्ध आत्मतत्त्व के संवेदन से प्रकट हुई आनन्दानुभव के फलस्वरूप यह अनन्तसुख प्रकट हुआ ।

प्रश्न २८—अवगाहनत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक सिद्ध के क्षेत्र में अनन्तसिद्धों का भी अवगाहन हो जावे, इस सामर्थ्य को अवगाहनत्व कहते हैं ।

प्रश्न २९—यह अवगाहनत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अमूर्त निराबाध निज चैतन्यस्वभाव की पहिले भावना, उपासना की जिसके फल स्वरूप यह

अवगाहनत्व प्रकट हुआ ।

प्रश्न ३०—सूक्ष्मत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवलज्ञान द्वारा ही गम्य अमूर्त प्रदेशात्मक होने को सूक्ष्मत्व कहते हैं ।

प्रश्न ३१—यह सूक्ष्मत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से रहित निज शुद्धात्मतत्त्व के श्रद्धान, ज्ञान, आचरण से यह सूक्ष्मत्व प्रकट हुआ ।

प्रश्न ३२—अगुरुलघुत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे अन्य न कोई गुरु हो और इस सिद्धावस्था में रहने वाले अनन्त जीवों से कोई न लघु हो ऐसी साम्य अवस्था के प्राप्त होने को अगुरुलघुत्व कहते हैं अथवा न ऐसे भारी हो जाये कि लोहपिण्डवत् नीचे पतन हो जाये और न ऐसे लघु हो जायें कि आक के तूल की तरह भ्रमण ही होता रहे, ऐसे विकास को अगुरुलघुत्व कहते हैं ।

प्रश्न ३३—यह अगुरुलघुत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—सर्व जीवों में एकस्वरूप निज चैतन्य सामान्यस्वरूप की अभेद उपासना की, उसके फलस्वरूप यह अगुरुलघुत्व प्रकट हुआ ।

प्रश्न ३४—ये आठों गुण त्रैकालिक तो नहीं हैं, ये किसी समय से ही प्रकट हुये, फिर इन्हें गुण क्यों बताया ?

उत्तर—ये आठों किसी समय से ही प्रकट हुये अत: पर्यायें हैं । यहाँ गुण शब्द का अर्थ है विशेषता । सिद्धों की विशेषता इन ८ विकासों द्वारा बताई है ।

प्रश्न ३५—सिद्धभगवान चरमशरीर से कुछ ऊन क्यों होते हैं ?

उत्तर—इसके दो कारण है—(१) शरीर के अग्र नख, केश और ऊपरी सूक्ष्म त्वचा में आत्मप्रदेश नहीं होते हैं, सो शरीर से मुक्त होने पर पूर्व शरीर से, जिसमें नख, केश, त्वचा भी थे, कुछ कम अवगाहना है । (२) सयोगकेवली के अन्तिम समय में शरीर व अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय की व्युच्छित्ति हो जाती है । इस कारण अयोगकेवली के प्रथम समय में ही नासिकाछिद्र आदि समाप्त हो जाते हैं । इसलिये किञ्चित् ऊनपना हो जाता है । यही ऊनपना सिद्धभगवान के प्रदेशावगाहना में है ।

प्रश्न ३६—शरीर का आवरण समाप्त होने पर आत्मप्रदेश फैलकर लोकप्रमाण क्यों नहीं हो जाते ?

उत्तर—आत्मप्रदेशों का विस्तार आत्मा का स्वभाव नहीं है, विस्तार शरीर नामकर्म के आधीन है । शरीर नामकर्म के अभाव से विस्तार का भी अभाव है ।

प्रश्न ३७—जैसे दीपक के आवरण का अभाव होने से दीपक का प्रकाश एकदम फैल जाता है, क्या इसी तरह आत्मप्रदेश भी फैल सकते हैं ?

उत्तर—दीपक तो पहिले भी निरावरण हो सकता है, पीछे आवरण आ सकता है, अत: दीप का आवरण

न होने पर दीप प्रकाश फैल सकता है, किन्तु आत्मा पहिले शरीररहित हो पश्चात् शरीरबद्ध हो, ऐसा नहीं है, अत: शरीर का आवरण हटने पर भी आत्मा शरीरप्रमाण रहता है ।

प्रश्न ३८—जो दीपक पहिले से आवरण के भीतर जला हो उसे फिर बाहर निकाल दिया जाये तो जैसे वह फैल जाता इस तरह आत्मा क्यों नहीं फैलता ?

उत्तर—दीपक तो निरावरण भी रह सकता यह आत्मा तो अनादि से शरीर में ही रहा, अत: दृष्टान्त विषम है । और दूसरी बात यह है कि लोक में रूढ़ि ऐसी है जो कहते हैं कि दीपक का प्रकाश फैल गया । वास्तव में दीप-प्रकाश दीप-शिखा के बाहर नहीं है ।

प्रश्न ३९—तो वह प्रकाश किसका है जो सारे कमरे में फैला है ?

उत्तर—जिस पदार्थ पर प्रकाश है वह उस ही पदार्थ का प्रकाशपरिणमन है । हां वह प्रकाशपरिणमन दीपक को निमित्त पाकर हुआ है ।

प्रश्न ४०—तब दीपक के सामने के बहुत दूर के पदार्थ क्यों नहीं प्रकाशपरिणमन के प्राप्त करते ?

उत्तर—यह परिणमने वाले पदार्थ की योग्यता है कि यह कितने दूरवर्ती और कितने तेजोमय पदार्थ को निमित्त पाकर प्रकाशरूप परिणमे । पदार्थ अपनी योग्यता के अनुसार प्रकाशपरिणत होते हैं । तभी तो कांच विशेष प्रकाशरूप परिणमता है, दीवार आदि साधारण प्रकाशपरिणत होते हैं ।

प्रश्न ४१—शरीर से मुक्त होने पर आत्मा का अवस्थान कहां रहता है ?

उत्तर—शरीर से मुक्त होने पर इस परमात्मा का अवस्थान लोक के शिखर पर हो जाता है ।

प्रश्न ४२—जहाँ शरीर से मुक्त हुए वहीं अवस्थान क्यों नहीं रहता ?

उत्तर—आत्मा का ऊर्ध्वगमनस्वभाव होने से आत्मा देहमुक्त होते ही एक समय में सबसे ऊपर चला जाता है ।

प्रश्न ४३—सिद्धप्रभु और ऊपर चलते ही क्यों नहीं जाते ?

उत्तर—गमनक्रिया के निमित्तभूत धर्मास्तिकाय का लोक के अन्त तक ही सद्भाव है अत: वहाँ तक ही गमन है ।

प्रश्न ४४—तब आत्मा की क्रिया क्या पराधीन नहीं हुई ?

उत्तर—नहीं, आत्मा अपनी क्रिया से ही क्रियावान् होता है, किन्तु ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि धर्मास्तिकाय को निमित्त पाकर आत्मा अपनी स्वतन्त्र क्रिया से क्रियावान हुआ ।

प्रश्न ४५—सिद्धप्रभु सिद्धावस्था में कब तक रहते हैं ?

उत्तर—सिद्धपर्याय नित्य है अर्थात् सदैव अनन्तानन्त काल तक रहेगी । अत: सिद्ध नित्य हैं ।

प्रश्न ४६—सिद्धपर्याय निलय क्यों है पर्याय तो अनित्य होती ?

उत्तर—सिद्धपर्याय स्वाभाविक और अनैमित्तिक है इसलिये सदा रहती है । सूक्ष्मदृष्टि अथवा वस्तुस्वभाव से प्रतिसमय नया-नया परिणमन होता ही है, किन्तु वह अनैमित्तिक और स्वाभाविक होने से पूर्ण समान ही

होता है । अत: सिद्धपर्याय को नित्य कहा ।

प्रश्न ४७—नया-नया परिणमन सिद्धों में क्या होता है ?

उत्तर—जैसे आधा घण्टा तक बिजली जली तो वहाँ प्रतिक्षण नयी-नयी बिजली हुई । लगातार होने से व समान प्रकाश होने से उसमें अन्तर मालूम नहीं होता । वैसे सिद्धों के प्रतिसमय के परिणमन में अन्तर नहीं होता । प्रतिसमय शक्ति का उपयोग तो हो ही रहा है ।

प्रश्न ४८—प्रतिसमय उत्पाद व्यय होने का कारण क्या है ?

उत्तर—अगुरुलघु गुण के ६ वृद्धिस्थानों में व ६ हानिस्थानों में परिणमन होने से उत्पाद व्यय होता रहता है ।

प्रश्न ४९—क्या सिद्धभगवान में स्थूलरूप से भी कोई उत्पाद व्यय होता है ?

उत्तर—व्यञ्जनपर्याय की अपेक्षा से स्थूल उत्पादव्यय भी है अर्थात् संसारपर्याय का तो विनाश हुआ और सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ । यहाँ जीवद्रव्य ध्रौव्यरूप से रहा ।

प्रश्न ५०—सिद्धप्रभु के स्वरूप जानने से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—अनन्त आनन्द आत्यन्तिक शुद्ध सिद्धपर्याय की जिस स्वभाव के साथ एकता हुई है वह स्वभाव मुझमें भी अनादिसिद्ध है । इस स्वभाव की भावना, उपासना और इसी स्वभाव के अवलम्बन से शुद्ध निर्मल सिद्धपर्याय प्रकट होती है । एतदर्थ निज सहजसिद्ध चैतन्यस्वभाव में अपनी वर्तमान ज्ञान पर्याय जोड़नी चाहिये ।

।। इस प्रकार जीवतत्त्व के प्ररूपण में प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ।।